॥ ओ३म् ॥

भूमिका

सब सज्जन लोगों को विदित होवे कि मैंने बहुत सज्जनों के अनुरोध करने से श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९३२ कार्त्तिक कृष्णपक्ष ३० शनिवार के दिन 'संस्कारविधि' का प्रथमारम्भ किया था। उसमें संस्कृतपाठ सब एकत्र और भाषापाठ एकत्र लिखा था। इस कारण संस्कार करानेवाले मनुष्यों को संस्कृत और भाषा दूर-दूर होने से कठिनता पड़ती थी और जो एक हज़ार पुस्तक छपे थे, उनमें से अब एक भी नहीं रहा। इसलिए श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९४० आषाढ़ बदि १३ रविवार के दिन पुनः संशोधन करके छपवाने के लिए विचार किया।

अब की बार जिस-जिस संस्कार का उपदेशार्थ प्रमाण-वचन और प्रयोजन है, वह-वह संस्कार के पूर्व लिखा जाएगा। तत्पश्चात् जो-जो संस्कार में कर्त्तव्य विधि है, उस-उसको क्रम से लिखकर पुनः उस संस्कार का शेष विषय जोकि दूसरे संस्कार तक करना चाहिए, वह लिखा है और जो विषय प्रथम अधिक लिखा था, उसमें से अत्यन्त उपयोगी न जानकर छोड़ भी दिया है और अब की बार जो-जो अत्यन्त उपयोगी विषय है, वह-वह अधिक भी लिखा है।

इसमें यह न समझा जावे कि प्रथम विषय युक्त न था, और युक्त छूट गया था उसका संशोधन किया है, किन्तु उन विषयों का यथावत् क्रमबद्ध संस्कृत के सूत्रों में प्रथम लेख किया था। उसमें सब लोगों की बुद्धि कृतकारी नहीं होती थी,

इसलिए अब सुगम कर दिया है, क्योंकि संस्कृतस्थ विषय विद्वान् लोग समझ सकते थे, साधारण नहीं।

इसमें सामान्य विषय, जोकि सब संस्कारों के आदि और उचित समय तथा स्थान में अवश्य करना चाहिए, वह प्रथम सामान्यप्रकरण में लिख दिया है और जो मन्त्र वा क्रिया सामान्यप्रकरण की संस्कारों में अपेक्षित है, उसके पृष्ठ, पंक्ति की प्रतीक उन कर्त्तव्य संस्कारों में लिखी है कि जिसको देखके सामान्यविधि की क्रिया वहाँ सुगमता से कर सकें और सामान्यप्रकरण का विधि भी सामान्यप्रकरण में लिख दिया है, अर्थात् वहाँ का विधि करके संस्कार का कर्त्तव्य कर्म करे और जो सामान्यप्रकरण का विधि लिखा है, वह एक स्थान से अनेक स्थलों में अनेक बार करना होगा। जैसे अग्न्याधान प्रत्येक संस्कार में कर्त्तव्य है, वैसे वह सामान्यप्रकरण में एकत्र लिखने से सब संस्कारों में बारम्बार न लिखना पड़ेगा।

इसमें प्रथम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, पुनः स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ, तदनन्तर सामान्य-प्रकरण, पश्चात् गर्भाधानादि अन्त्येष्टिपर्यन्त सोलह संस्कार क्रमशः लिखे हैं और यहाँ सब मन्त्रों का अर्थ नहीं लिखा है, क्योंकि इसमें कर्मकाण्ड का विधान है, इसलिए विशेषकर क्रिया-विधान लिखा है और जहाँ-जहाँ अर्थ करना आवश्यक है, वहाँ-वहाँ अर्थ भी कर दिया है और मन्त्रों के यथार्थ अर्थ मेरे किये वेद-भाष्य में लिखे ही हैं, जो देखना चाहें वहाँ से देख लेवें। यहाँ तो केवल क्रिया करना ही मुख्य है। जिन के द्वारा शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं, इसलिए संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।

॥ इति भूमिका ॥

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

ओ३म् नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय।

अथ संस्कारविधिं वक्ष्यामः

ओं स॒ह ना॑ववतु। स॒ह नौ॑ भुनक्तु। स॒ह वी॒र्य्यं॑ करवावहै।
ते॒ज॒स्विना॒वधी॑तमस्तु। मा विद्वि॑षा॒वहै॑।
ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

—तैत्तिरीयआरण्यके, अष्टमप्रपाठके, प्रथमानुवाके

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद्विभुः।
भूयात्तमां सहायो नस्सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः॥ १॥

गर्भाद्या मृत्युपर्य्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि।
वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्तविद्यं परेश्वरम्॥ २॥

वेदादिशास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात्।
आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये॥ ३॥

संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते।
असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते॥ ४॥

अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः।
शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनः॥ ५॥

कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः।
वेदविज्ञानविरहैः स्वार्थिभिः परिमोहितैः॥ ६॥

प्रमाणैस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः।
जनानां सुखबोधाय संस्कारविधिरुत्तमः॥ ७॥

बहुभिः सज्जनैस्सम्यङ् मानवप्रियकारकैः।
प्रवृत्तो ग्रन्थकरणे क्रमशोऽहं नियोजितः॥ ८॥

दयाया आनन्दो विलसति परो ब्रह्मविदितः
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा हीशशरणाऽ-
स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः॥ ९॥

चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्त्तिकस्यान्तिमे दले।
अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया॥ १०॥

बिन्दुवेदाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले।
त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम्॥ ११॥

०—०

सब संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों के पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाके करे और सब लोग उसमें ध्यान लगाकर सुनें और विचारें—

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।

यद् भद्रन्तन्नऽआ सुव॥ १॥ —यजुः० अ० ३०। मं० ३।

अर्थ—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा सुव) दूर कर दीजिए। (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव और पदार्थ है, (तत्) वह सब हमको (आ सुव) प्राप्त कीजिए॥ १॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २॥

—यजुः० अ० १३। मं० ४॥

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य-चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्त्तमान था, (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है। हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें॥ २॥

यऽआत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः।

यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ३॥

—यजुः० अ० २५। मं० १३॥

अर्थ—(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता, (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा, (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्षसुखदायक है, (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा-पालन करने में तत्पर रहें॥ ३॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव।
यऽईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४॥

—यजुः० अ० २३। मं० ३॥

अर्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राणवाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एकः इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है, (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा-पालन में समर्पित करके (विधेम) विशेष भक्ति करें॥ ४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ५॥

—यजुः० अ० ३२। मं० ६॥

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाववाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण, (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त, अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥६॥

—ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १०॥

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मान्! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़-चेतनादिकों को (न) नहीं (परि बभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें, (तत्) उस-उसकी कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे। जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥

—यजुः० अ० ३२। मं० १०॥

अर्थ—हे मनुष्यो! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों

को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक, (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक, (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करनेहारा, (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है, और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख-दुःख से रहित, नित्यानन्दयुक्त, (धामन्) मोक्षस्वरूप, धारण करनेहारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। अपने लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें॥७॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम॥८॥

—यजुः० अ० ४०। मं० १६॥

अर्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करनेहारे, (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुपथा) अच्छे, धर्मयुक्त, आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइए और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिए। इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नमः उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें॥८॥

॥ इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ॥

अथ स्वस्तिवाचनम्

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ १॥
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ २॥

—ऋ० मं० १। सू० १। मं० १, ९॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्य-
दितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति
द्यावापृथिवी सुचेतुना॥ ३॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य
यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय
आदित्यासो भवन्तु नः॥ ४॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः
स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः
पात्वंहसः॥ ५॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न
इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥ ६॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ ७॥

—ऋ० मं० ५। सू० ५१। ११-१५॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८॥

—ऋ० मं० ७। सू० ३५। ६५॥

येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये॥९॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद् देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥१०॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमायययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये॥११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥१३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये॥१४॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये॥ १५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ १६॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये॥ १७॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये॥ १८॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥ १९॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये॥ २०॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥ २१॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति। सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा॥ २२॥

—ऋ० मं० १०। सू० ६३। [मं० ३-१६]

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥ २३॥

—यजुः० अ० १। मं० १

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतासऽउद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥ २४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥ २५॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ २६॥

स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ २७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ २८॥

—यजुः० २५।१४, १५, १८, १९, २१॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।

२र २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ २९॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
त्वमग्ने यज्ञानाꣳ होता विश्वेषाꣳ हितः।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवेभिर्मानुषे जने॥ ३०॥

—साम० पूर्वा० प्रपा० १। मं० १, २॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥ ३१॥

—अथर्व० कां० १। सू० १। मं० १॥

॥ इति स्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्तिकरणम्

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥
शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥ ९॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥ १०॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः॥ ११॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु॥ १२॥

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा॥ १३॥

—ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १-१३॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ १४॥

शं नो वातः पवताञ्छं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु॥ १५॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳरात्रीः प्रति धीयताम्।
शं नऽइन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं नऽइन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं नऽइन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः॥ १६॥

शं नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ १७॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ १८॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ १९॥

—यजुः० अ० ३६। मं० ८, १०-१२, १७, २४॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २०॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २१॥

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २२॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २३॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २४॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ २५॥

—यजुः० अ० ३४। मं० १-६॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शꣳ राजन्नोषधीभ्यः॥ २६॥

—साम० उत्तरा० प्रपा० १। मं० ३॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥ २७॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥ २८॥

—अथर्व० कां० १९। सू० १५। मं० ५, ६॥

॥ इति शान्तिकरणम् ॥

अथ सामान्यप्रकरणम्

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिए, परन्तु जहाँ कहीं विशेष होगा वहाँ सूचना कर दी जाएगी कि यहाँ पूर्वोक्त अमुक कर्म न करना और इतना अधिक करना, स्थान-स्थान में जना दिया जाएगा।

यज्ञदेश—यज्ञ का देश पवित्र, अर्थात् जहाँ स्थल, वायु शुद्ध हो, किसी प्रकार का उपद्रव न हो।

यज्ञशाला—इसी को 'यज्ञमण्डप' भी कहते हैं। यह अधिक-से-अधिक सोलह हाथ सम चौरस, चौकोण और न्यून-से-न्यून आठ हाथ की हो। यदि भूमि अशुद्ध हो, तो यज्ञशाला की पृथिवी और जितनी गहिरी वेदी बनानी हो, उतनी पृथिवी दो-दो हाथ खोद अशुद्ध [मट्टी] निकालकर उसमें शुद्ध मट्टी भरें। यदि सोलह हाथ की सम चौरस हो तो चारों ओर बीस खम्भे और जो आठ हाथ की हो तो बारह खम्भे लगाकर उनपर छाया करें।

वह छाया की छत्त वेदी की मेखला से दश हाथ ऊँची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में चार द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा, पताका, पल्लव आदि बाँधें। नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम, हल्दी, मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें। मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गलकार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिए यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना करें। इसीलिए निम्नलिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें।

यज्ञकुण्ड का परिमाण—जो लक्ष आहुति करनी हों, तो चार-चार हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे, अर्थात् तले में एक हाथ चौकोण लम्बा-चौड़ा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों, उतना ही गहिरा-चौड़ा कुण्ड बनाना, परन्तु अधिक आहुतियों में दो-दो हाथ [अधिक] अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छह हस्त परिमाण का चौड़ा और सम चौरस कुण्ड बनाना और जो पचास हज़ार आहुति देनी हों, तो एक हाथ घटावे, अर्थात् तीन हाथ गहिरा-चौड़ा सम चौरस और पौन हाथ नीचे तथा पच्चीस हज़ार आहुति देनी हों, तो दो हाथ चौड़ा-गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे। दश हज़ार आहुति तक इतना ही, अर्थात् दो हाथ चौड़ा-गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे रखना। पाँच हज़ार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा-गहिरा सम चौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे। यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है। यदि इसमें ढाई हज़ार आहुति मोहनभोग, खीर और ढाई हज़ार घृत की देवें, तो दो ही हाथ का चौड़ा-गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खें।

चाहे घृत की हज़ार आहुति देनी हों, तथापि सवा हाथ से न्यून चौड़ा-गहिरा सम चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावें और इन कुण्डों में पन्द्रह अंगुल की मेखला अर्थात् पाँच-पाँच अंगुल की ऊँची तीन बनावें और ये तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी। प्रथम पाँच अंगुल ऊँची और पाँच अंगुल चौड़ी, इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें।

यज्ञसमिधा—पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आंब [आम], बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी-बड़ी कटवा लेवें, परन्तु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिन-देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों। अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर और बीच में चिनें।

होम के चार प्रकार के द्रव्य—(प्रथम—**सुगन्धित**) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेतचन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि। (द्वितीय—**पुष्टिकारक**) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि। (तीसरे—**मिष्ट**) शक्कर, सहत, छुवारे, दाख आदि। (चौथे—**रोगनाशक**) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि ओषधियाँ।

स्थालीपाक—नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावें। इसका प्रमाण—

ओं देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः॥

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिए, अर्थात् सबको यथावत् शोध-छान, देख-भाल, सुधार कर करें। इन द्रव्यों को यथायोग्य मिलाके पाक करना। जैसेकि सेर घी के मोहनभोग में रत्तीभर कस्तूरी, मासेभर केशर, दो मासे जायफल-जावित्री, सेरभर मीठा, सब डालकर मोहनभोग बनाना। इसी प्रकार अन्य मीठा भात, खीर, खीचड़ी, मोदक आदि होम के लिए बनावें।

चरु अर्थात् होम के लिए पाक बनाने का विधिः—

'ओम् अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि' अर्थात् जितनी आहुति देनी हों, प्रत्येक आहुति के लिए चार-चार मूठी चावल आदि लेके **(ओम् अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि)** अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवें। जब होम के लिए दूसरे पात्र में लेना हो, तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली में निकालके यथावत् सुरक्षित रक्खें और उसपर घृत सेचन करें।

यज्ञपात्र—विशेषकर चाँदी, सोना अथवा काष्ठ के पात्र होने चाहिएँ। निम्नलिखित प्रमाणे—

अथ पात्रलक्षणान्युच्यन्ते—बाहुमात्र्यः पाणिमात्रपुष्कराः, षडङ्गुलखातास्त्वग्बिला हंसमुखप्रसेकाः, मूलदण्डाश्चतस्रः स्रुचो भवन्ति। तत्र पालाशी जुहूः, आश्वत्थ्युपभृत्, वैकङ्कती ध्रुवा, अग्निहोत्रहवणी च।

अरत्निमात्रः खादिरः स्रुवः, अंगुष्ठपर्वमात्रपुष्करः, तथाविधो द्वितीयो वैकङ्कतः स्रुवः।

वारणं बाहुमात्रं मकराकारम्, अग्निहोत्रहवणीनिधानार्थं कूर्चम्। अरत्निमात्रं खादिरं खड्गाकृतिवज्रम्।

वारणान्यहोमसंयुक्तानि—तत्रोलूखलं नाभिमात्रम्। मुसलं शिरोमात्रम्। अथवा मुसलोलूखले वार्क्षे सारदारुमये शुभे इच्छाप्रमाणे भवतः। तथा—

खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः। यद्वोभौ वारणौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ॥

शूर्पं वैणवमेव वा ऐषीकं नलमयं वाऽचर्मबद्धम्।

प्रादेशमात्री वारणी शम्या।

कृष्णाजिनमखण्डम्।

दृषदुपले अश्ममये।

वारणीं २४ हस्तमात्रीं, २२ अरत्निमात्रीं वा खातमध्यां मध्यसंग्रहीतामिडापात्रीम्।

अरत्निमात्राणि ब्रह्मयजमानहोतृपत्न्यासनानि।

मुञ्जमयं त्रिवृतं व्याममात्रं योक्त्रम्।

प्रादेशदीर्घे अष्टाङ्गुलायते षडङ्गुलखातमण्डलमध्ये पुरोडाशपात्र्यौ।

प्रादेशमात्रं द्व्यङ्गुलपरीणाहं तीक्ष्णाग्रं शृतावदानम्।

आदर्शाकारे चतुरस्रे वा प्राशित्रहरणे। तयोरेकमीषतखात-मध्यम्।

षडङ्गुलं कङ्कतिकाकारमुभयतःखातं षडवत्तम्।

द्वादशाङ्गुलमर्द्धचन्द्राकारमष्टाङ्गुलोत्सेधमन्तर्द्धानकटम्।
उपवेशोऽरत्निमात्रः।
मुञ्जमयी रज्जुः।
खादिरान् द्वादशाङ्गुलदीर्घान् चतुरङ्गुलमस्तकान् तीक्ष्णाग्रान् शङ्कून्।
यजमानपूर्णपात्रं पत्नीपूर्णपात्रं च द्वादशाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुल-विस्तारं चतुरङ्गुलखातम्।
तथा प्रणीतापात्रञ्च।
आज्यस्थाली द्वादशाङ्गुलविस्तृता प्रादेशोच्चा।
तथैव चरुस्थाली। अन्वाहार्यपात्रं पुरुषचतुष्टयाहारपाकपर्याप्तम्।
समिदिध्मार्थं पलाशशाखामयम्।

कौशं बर्हिः। ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि।

पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमवासश्चतुष्टयम्।

अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपञ्चाशद् गावः, द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः, षट्पक्षे त्रयोदश, सर्वेषु पक्षेषु आदित्येष्टौ धेनुः। वरार्थं चतस्रो गावः।

स्रुवः ४, अंगुल २४ शम्या प्रादेश १ अरणी ४

उपल शृतावदान प्रादेशमात्र कूर्च बाहुमात्र १

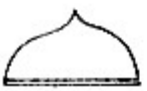
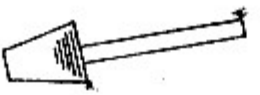

पाटला ४, लम्बा २४ अंगुल

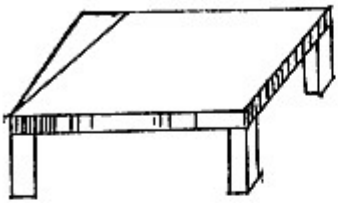

उलूखल नाभिमात्र

मुसल

पूर्णपात्र अ० १२, चौड़ा अंगुल ६

स्रुच सर्व ४, बाहुमात्र

अग्नि १, अं० २४

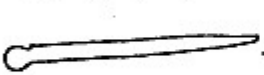

ओवली अं० १२

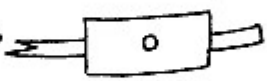

चात्र अं० १२

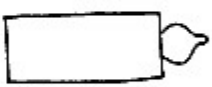

षडवत्त अं० २४

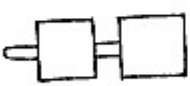

पुरोडाशपात्री

इडा अंगुल २४

अंगुल ६ पोली अंगुल ४ ऊँची अधरारणी

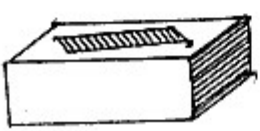

प्राशित्रहरणे दर्पणाकार

पिष्टपात्री

प्रणीता अं० १२ प्रोक्षणी अं० १२ अंगोछा २४ अं० लंबा

अन्तर्धान १, अं० १२ खाँडा अंगुल २४ उत्तरारणी टुकड़ा १८

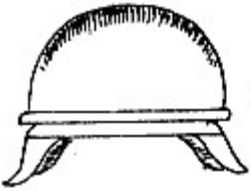
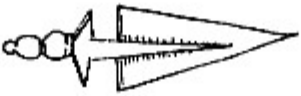
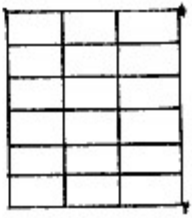

मूलेखात दृषद् उपवेश १, अं० २४ शूर्प

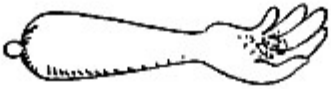

समिध पलाश की १८ हस्तमात्र, इध्म परिधि ३ पलाश की बाहुमात्र। सामिधेनी समित् प्रदेशमात्र। समीक्षण लेर ५। शाटी १। दृषदुपल १ दीर्घ अंगुल १२ पृ० ५३। उपल अंगुल ६। नेतु व्याम=हाथ ४, त्रिवृत् तृण वा गोबाल का।

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्तिः—'ओमावसोः सदने सीद'।

इस मन्त्र का उच्चारण करके ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करे।

ऋत्विगुक्तिः—ओं सीदामि।

ऐसा कहके जो उसके लिए आसन बिछाया हो उसपर बैठे।

यजमानोक्तिः—अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे।

ऋत्विगुक्तिः—वृतोऽस्मि।

ऋत्विजों के लक्षण—अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मत वाले, वेदवित् एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करें।

जो एक हो तो उसका पुरोहित, और जो दो हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और तीन हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा।

इनका आसन वेदी के चारों ओर, अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख, और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिए और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख, अथवा दक्षिण में आसन पर बैठके उत्तराभिमुख रहे। इन ऋत्विजों को सत्कारपूर्वक आसन पर बैठना, और वे प्रसन्नतापूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के बिना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें।

और अपने-अपने जलपात्र से सब जने, जोकि यज्ञ करने को बैठे हों, वे इन मन्त्रों से तीन-तीन **आचमन** करें, अर्थात् एक-एक से एक-एक बार आचमन करें। वे मन्त्र ये हैं—

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा॥ १॥ इससे एक।

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा॥ २॥ इससे दूसरा।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा॥ ३॥ इससे तीसरा आचमन करके, तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से जल ले-

करके अङ्गों का स्पर्श करें—

ओं वाङ् म आस्येऽस्तु॥ इस मन्त्र से मुख।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र।

ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु॥ इस मन्त्र से दोनों आँखें।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु॥ इस मन्त्र से दोनों कान।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु।

ओम् ऊर्वोर्मऽओजोऽस्तु॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा और

ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल-स्पर्श करके मार्जन करना। (पुनः) पूर्वोक्त समिधाचयन वेदी में करें। पुनः—

ओं भूर्भुवः स्वः॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला, अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धर, उसमें छोटी-छोटी लकड़ी लगाके यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे। वह मन्त्र यह है—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥

—यजुः० अ० ३। मं० ५॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर, उसपर छोटे-छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर, अगला मन्त्र पढ़के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे—

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥ —यजुः० अ० १५। मं० ५४॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे, तब चन्दन की

अथवा ऊपरिलिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबा, उनमें से एक-एक निकाल नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें। वे मन्त्र ये हैं—

ओम् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदं न मम॥ १॥

—इस मन्त्र से एक।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये—इदं न मम॥ २॥

—इससे, और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदं न मम॥ ३॥

—इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों से दूसरी।

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदं न मम॥ ४॥

—यजुः० अ० ३। मं० १, २, ३॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य, जोकि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चाँदी, काँसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ-पात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें, पश्चात् ऊपरिलिखित घृतादि जोकि उष्ण कर छान, पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिलाकर पात्रों में रक्खा हो, उसमें से कम-से-कम ६ मासाभर घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो, अधिक-से-अधिक छटांकभर की आहुति देवें, यही आहुति का परिमाण है।

उस घृत में से चमसा कि जिसमें छह मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो, भरके नीचे लिखे मन्त्र से पाँच आहुति देनी—

ओम् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥५॥

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेके वेदी के पूर्व आदि दिशा और चारों ओर छिड़कावें। उसके ये मन्त्र हैं—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व॥ इस मन्त्र से पूर्व।

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व॥ इससे पश्चिम।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व॥ इससे उत्तर और—

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ —यजुः० अ० ३०। मं० १॥

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावें।

इसके पश्चात् **सामान्यहोमाहुति** गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें। इसमें मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती हैं, उनमें से यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में जो एक आहुति, और यज्ञकुण्ड के दक्षिणभाग में दूसरी आहुति देनी होती है, उनका नाम "**आघाराहुति**" है और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियाँ दी जाती हैं, उनका नाम "**आज्यभागाहुति**" है। सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा, मध्यमा, अनामिका से स्रुवा को पकड़के—

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदं न मम॥

—इस मन्त्र से वेदी के उत्तरभाग अग्नि में।

ओं सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय—इदं न मम॥

—इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी। तत्पश्चात्—

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय—इदं न मम॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी।

उसके पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति देके, जब प्रधानहोम अर्थात् जिस-जिस कर्म में जितना-जितना होम करना हो करके, पश्चात् भी पूर्णाहुति से पूर्व पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागा०) देवें।

पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृत में से स्रुवा को भरके प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें—

ओं भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदं न मम॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे—इदं न मम॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय—इदं न मम॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदं न मम॥

ये चार घी की आहुति देकर, स्विष्टकृत् होमाहुति एक ही है, यह **घृत की अथवा भात** की देनी चाहिए। उसका मन्त्र—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदं न मम॥

इससे एक आहुति करके, प्राजापत्याहुति करें। यह नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोलके देनी चाहिए—

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम॥

इससे मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवें, परन्तु ये नीचे लिखी आहुति चौल, समावर्त्तन और विवाह में मुख्य हैं, वे चार मन्त्र ये हैं—

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥ १॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥ २॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥ ३॥ —ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं० १९-२१॥

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदं न मम॥ ४॥

—ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १०॥

इनसे घृत की चार आहुति करके "अष्टाज्याहुति" निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गल-कार्यों में आठ आहुति देवें, परन्तु किस-किस संस्कार में कहाँ-कहाँ देनी चाहिएँ, यह विशेष बात उस-उस संस्कार में लिखेंगे। वे आठ आहुति-मन्त्र ये हैं—

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्याम्—इदं न मम॥ १॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्याम्—इदं न मम॥ २॥

—ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४, ५॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युराचके स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदं न मम॥ ३॥
—ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १९॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदं न मम॥ ४॥
—ऋ० मं० १। सू० २४। मं० ११॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—इदं न मम॥ ५॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे—इदं न मम॥ ६॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च—इदं न मम॥ ७॥
—ऋ० मं० १। सू० २४। मं० १५॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥
इदं जातवेदोभ्याम्—इदं न मम॥ ८॥ —युजः० ५। ३

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे। न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करे, किन्तु मध्यभाग

जैसाकि जिस वेद का उच्चारण है, करे। यदि यजमान न पढ़ा हो, तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़, मन्दमति, काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो, तो वह शूद्र है, अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो, तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करें, और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावें।

पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करें। स्रुवा को घृत से भरके—

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा॥

इस मन्त्र से एक आहुति देवें। ऐसे दूसरी और तीसरी आहुति देके, जिसको दक्षिणा देनी हो देवें, वा जिसको जिमाना हो जिमा, दक्षिणा देके सबको विदाकर स्त्री-पुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोग को प्रथम जीमके पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।

मङ्गलकार्य

अर्थात् गर्भाधानादि संन्यास-संस्कार पर्यन्त पूर्वोक्त [कार्य] और निम्नलिखित सामवेदोक्त महावामदेव्यगान अवश्य करें। वे मन्त्र ये हैं—

१ २उ३क्रु २र १ २ ३१ २र३ २ ३ १२३ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
२ ३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता॥ १॥

१ २उ३क्रु २र १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
दृढा चिदारुजे वसु॥ २॥

१ २उ३क्रु २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ओं भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
३ १ १ ३ १ २
शतं भवास्यूतये॥ ३॥

महावामदेव्यम्

काऽ५या। नश्चा३ यित्रा३ आभुवात्। ऊ। ती सदावृधः स। खा। औ३ होहायि। कया२३ शचायि। ष्ठयौहो३। हुमा२। वाऽ२र्तो३ऽ५हायि॥ (१)॥

काऽ५स्त्वा। सत्यो३मा३दानाम्। मा। हिष्ठमात्सादन्ध। सा। औ३होहायि। दृढा२३ चिदा। रुजौहो३। हुमा२। वाऽ२सो३ऽ५हायि॥ (२)॥

आऽ५भी। षुणा३ः सा३खीनाम्। आ। विता जरायि तू। णाम्। औ२३ हो हायि। शता२३म्भवा। सियौहो३ हुमा२। ताऽ२ योऽ३ऽ५हायि॥ (३)॥

—साम० उत्तरार्चिके। अध्याये १। खं० ४। मं० १, २, ३॥

यह [महा] वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्रीपुरुष, कार्यकर्त्ता सद्धर्मी, लोकप्रिय, परोपकारी, सज्जन, विद्वान् वा त्यागी, पक्षपातरहित संन्यासी, जो सदा विद्या की वृद्धि और सबके कल्याणार्थ वर्त्तनेवाले हों उनको नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करें। पश्चात् जो कोई देखने ही के लिए आये हों, उनको भी सत्कारपूर्वक विदा कर दें।

अथवा जो संस्कार-क्रिया को देखना चाहें, वे पृथक्-पृथक् मौन करके बैठे रहें, कोई बातचीत हल्ला-गुल्ला न करने पावें। सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें। विशेष कर्मकर्त्ता और कर्म करानेवाले शान्ति, धीरज और विचारपूर्वक क्रम से कर्म करें और करावें।

यह सामान्यविधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्त्तव्य है॥

॥ इति सामान्यप्रकरणम्॥

अथ गर्भाधानविधिं वक्ष्यामः

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।

—मनुस्मृति-द्वितीयाध्याये, श्लोकः १६॥

अर्थ—मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिए निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि=मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं।

शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं। उनमें से प्रथम गर्भाधान-संस्कार है।

गर्भाधान उसको कहते हैं कि जो **"गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन् येन वा कर्मणा, तद् गर्भाधानम्"** गर्भ का धारण, अर्थात् वीर्य का स्थापन गर्भाशय में स्थिर करना जिससे होता है।

जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं, वैसे उत्तम, बलवान् स्त्री-पुरुषों से [उत्पन्न] सन्तान भी उत्तम होते हैं। इससे पूर्ण युवावस्था [पर्यन्त] यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके, अर्थात् न्यून-से-न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ वर्ष का पुरुष अवश्य हो और इससे अधिक वयवाले होने से अधिक उत्तमता होती है, क्योंकि बिना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिए अवकाश और गर्भ के धारण-पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता और २५ वर्ष के बिना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता। इसमें यह प्रमाण है—

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।

समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्॥ १॥

—सुश्रुते सूत्रस्थाने, अ० ३५।१०॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।

यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥ २॥

जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।

तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥ ३॥

—सुश्रुते सूत्रस्थाने, अ० १०।४७-४८॥

ये सुश्रुत के श्लोक हैं। शरीर की उन्नति वा अवनति का विधि जैसा वैद्यकशास्त्र में है, वैसा अन्यत्र नहीं। जो उसका मूल विधान है, वह आगे वेदारम्भ में लिखा जाएगा, अर्थात् किस-किस वर्ष में कौन-कौन धातु किस-किस प्रकार का कच्चा वा पक्का, वृद्धि वा क्षय को प्राप्त होता है, यह सब वैद्यकशास्त्र में विधान है, इसलिए गर्भाधानादि संस्कारों के करने में वैद्यकशास्त्र का आश्रय विशेष लेना चाहिए।

अब देखिए सुश्रुतकार परम वैद्य कि जिनका प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं, वे विवाह और गर्भाधान का समय न्यून-से-न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ वर्ष का पुरुष अवश्य होवे, यह लिखते हैं।

जितना सामर्थ्य २५वें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है, उतना ही सामर्थ्य १६वें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है। इसलिए वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्यवाले जानें॥ १॥

सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में २५ वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है, तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है॥ २॥

और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे, अथवा कदाचित् जीवे भी तो उसके अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों। इसलिए अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिए॥ ३॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति। आषोडशाद् वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः सम्पूर्णता ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति॥

अर्थ—सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि और पच्चीसवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं की पूर्णपुष्टि, और उससे आगे किंचित्-किंचित् धातु=वीर्य की हानि होती है, अर्थात् चालीसवें वर्ष [तक] सब अवयव पूर्ण हो जाते हैं। पुनः खान-पान से उत्पन्न जो वीर्य धातु होता है, वह कुछ-कुछ क्षीण होने लगता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहें, तो कन्या १६ वर्ष की और पुरुष २५ वर्ष का अवश्य होना चाहिए। मध्यम समय कन्या का बीस वर्षपर्यन्त और पुरुष का चालीसवाँ वर्ष, और उत्तम समय कन्या का चौबीस वर्ष और पुरुष का अड़तालीस वर्षपर्यन्त का है।

जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान, दीर्घायु, सुशील, बुद्धि-बल-पराक्रमयुक्त, विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें, वे सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधार का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करनेवाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रखके अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवें।

ऋतुदान का काल

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतस्सदा।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद् व्रतो रतिकाम्यया॥ १॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः॥ २॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः॥ ३॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम्॥ ४॥
पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समे पुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः॥ ५॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥ ६॥

—मनुस्मृति अ० ३॥

अर्थ—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है कि—

सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री का समागम करे और अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे। वैसे स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहे। जो स्त्रीव्रत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है, जैसेकि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती, वह पुरुष जब ऋतुदान देना हो, तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के १६ दिनों में पौर्णमासी, अमावास्या, चतुर्दशी वा अष्टमी आवे, उसको छोड़ देवे। इनमें

स्त्री-पुरुष रतिक्रिया कभी न करें॥ १॥

स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ रात्रि का है, अर्थात् रजोदर्शन दिन से लेके सोलहवें दिन तक ऋतु-समय है। उनमें से प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से लेके चार दिन निन्दित हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे, अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे। न वह स्त्री कुछ काम करे, किन्तु एकान्त में बैठी रहे, क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है। रजः अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर, जैसाकि फोड़े में से पीव वा रुधिर निकलता है, वैसा है॥ २॥

और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं, वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित हैं। और बाकी रहीं दश रात्रि, सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं॥ ३॥

जिनको पुत्र की इच्छा हो, वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं—ये छह रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें, परन्तु इनमें भी उत्तर-उत्तर श्रेष्ठ हैं। और जिनको कन्या की इच्छा हो, वे पाँचवीं, सातवीं, नववीं और पन्द्रहवीं—ये चार रात्रि उत्तम समझें*। इससे पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे॥ ४॥

पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा बन्ध्या स्त्री, क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का न रहना वा रहकर गिर जाना होता है॥ ५॥

जो पूर्व निन्दित आठ रात्रि कह आये हैं, उनमें जो स्त्री का संग छोड़ देता है, वह गृहाश्रम में बसता हुआ भी ब्रह्मचारी

---

* रात्रिगणना इसलिए की है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है।

ही कहाता है॥ ६॥

उपनिषदि गर्भलम्भनम्॥

—यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है॥

जैसा उपनिषद् में गर्भस्थापन-विधि लिखा है, वैसा करना चाहिए, अर्थात् पूर्वोक्त जैसाकि सोलहवें और पच्चीसवें वर्ष में विवाह करके ऋतुदान लिखा है, वही उपनिषद् में भी विधान है।

अथ गर्भाधानꣳस्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वꣳ स्नात्वा विरुजायास्तस्मिन्नेव दिवा 'आदित्यं गर्भमिति'॥

—यह पारस्करगृह्यसूत्र का वचन है॥

ऐसा ही गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी विधान है।

इसके अनन्तर स्त्री जब रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पाँचवें दिन स्नान कर रज-रोगरहित हो, उसी दिन **(आदित्यं गर्भमिति)** इत्यादि मन्त्रों से, जिस रात्रि में गर्भस्थापन करने की इच्छा हो, उससे पूर्व दिन में सुगन्धादि पदार्थों सहित पूर्व सामान्यप्रकरण के लिखित प्रमाणे हवन करके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देनी। यहाँ पत्नी पति के वाम-भाग में बैठे, और पति वेदी के पश्चिमाभिमुख पूर्व-दक्षिण वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख करके बैठे, और ऋत्विज भी चारों दिशाओं में यथामुख बैठें—

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ १॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्राश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥ २॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम॥ ३॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम॥ ४॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा॥ इदमग्निवायु-चन्द्रसूर्येभ्यः —इदन्न मम॥ ५॥

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ ६॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥ ७॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम॥ ८॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम॥ ९॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा॥ इदमग्निवायुचन्द्र-सूर्येभ्यः—इदन्न मम॥ १०॥

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ ११॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥ १२॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम॥ १३॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम॥ १४॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा॥ इदमग्निवायुचन्द्र-सूर्येभ्यः—इदन्न मम॥ १५॥

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ १६॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥ १७॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम॥ १८॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम॥ १९॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा॥ इदमग्निवायुचन्द्र-सूर्येभ्यः—इदन्न मम॥ २०॥

इन बीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी* और बीस आहुति करने से यत्किंचित् घृत बचे, वह काँसे के पात्र में ढाँकके रख देवे। इसके पश्चात् भात की आहुति देने के लिए यह विधि करना, अर्थात् एक चाँदी वा काँसे के पात्र में भात रखके उसमें घी, दूध और शक्कर मिलाके कुछ थोड़ी देर रखके जब घृत आदि भात में एकरस हो जाएँ, पश्चात् नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक आहुति अग्नि में देवे और स्रुवा का शेष घृत आगे धरे हुए काँसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे—

---

* इन बीस आहुतियों को देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श कर रक्खे।

ओम् अग्नये पवमानाय स्वाहा।
इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥ १॥
ओम् अग्नये पावकाय स्वाहा।
इदमग्नये पावकाय—इदन्न मम॥ २॥
ओम् अग्नये शुचये स्वाहा।
इदमग्नये शुचये—इदन्न मम॥ ३॥
ओम् अदित्यै स्वाहा॥ इदमदित्यै—इदन्न मम॥ ४॥
ओं प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥ ५॥
ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्।
अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे।
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां
समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा॥
इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम॥ ६॥

इन छह मन्त्रों से उस भात की आहुति देवें। तत्पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त ३४-३५ पृष्ठ-लिखित आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देनी। उन आठ मन्त्रों से आठ, तथा निम्नलिखित मन्त्रों से भी आज्याहुति देवें—

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा॥ १॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा स्वाहा॥ २॥
हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा॥ ३॥
—ऋ० मं १०। सू० १८४॥

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्।
गर्भो जरायुणावृतऽउल्बं जहाति जन्मना।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ
इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा॥४॥
यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां
तद्विद्यात्॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम
शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा॥५॥

—यजुर्वेदे॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा॥६॥
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा॥७॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा॥८॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा॥९॥

—अथर्व० कां० ६। सू० १७॥

इन ९ मन्त्रों से नव आज्य और मोहनभोग की आहुति देके, नीचे लिखे मन्त्रों से भी चार घृताहुति देवें—

ओं भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय-इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओम् अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदन्न मम ॥ ४ ॥

पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से घृत की आहुति देनी—

ओम् अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा ॥ इदं देवोभ्यो गातुविद्भ्यः—इदन्न मम ॥ १ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ २ ॥

इन कर्म और आहुतियों के पश्चात् पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे (ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं०) इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवें।

जो इन मन्त्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुए काँसे के उदकपात्र में इकट्ठा करते गये हों, जब आहुति हो चुकें, तब उन आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नानघर में जाकर उस घी का पग के नख से लेके शिरपर्यन्त सब अङ्गों पर मर्दन करके स्नान करे। तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछ, शुद्ध वस्त्र धारण करके कुण्ड के समीप आवे। तब दोनों वधू-वर कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य का दर्शन करें। उस समय—

ओम् आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परिवृङ्ग्धि हरसा माभिमंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ १ ॥

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्।

अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥ २ ॥

जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति।

पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥ ३ ॥

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः ।
चक्षुर्धाता दधातु नः ॥४॥
चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः ।
सं चेदं वि च पश्येम ॥५॥
सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य ।
वि पश्येम नृचक्षसः ॥६॥

इन मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान करके, वधू—

ओम् अमुक[1] गोत्रा शुभदा अमुक[2] दा अहं भो भवन्तमभिवादयामि।

ऐसा वाक्य बोलके अपने पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करे। तत्पश्चात् स्वपति के पिता पितामहादि और जो वहाँ अन्य माननीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की वृद्ध स्त्रियाँ हों, उनको भी इसी प्रकार वन्दन करे।

इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र की हुए पश्चात् अर्थात् वधू पत्नीत्व और वर पतित्व को प्राप्त हुए। पश्चात् दोनों पति-पत्नी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वेदी के पश्चिम भाग में बैठके वामदेव्यगान करें।

तत्पश्चात् यथोक्त[3] भोजन दोनों जने करें और पुरोहितादि सब मण्डली को सन्मानार्थ यथाशक्ति भोजन कराके आदर-

---

१. इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का नामोच्चारण करे।

२. इस ठिकाने वधू अपना नाम उच्चारण करे।

३. उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है। इसलिए पति-पत्नी अपने शरीर, आत्मा की पुष्टि के लिए बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें। सर्वौषधि ये हैं—

सत्कारपूर्वक सबको विदा करें।

इसके पश्चात् रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान-क्रिया करनी। गर्भाधान-क्रिया का समय प्रहर रात्रि के गये पश्चात् प्रहर रात्रि रहे तक है। जब वीर्य गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों स्थिरशरीर, प्रसन्नवन्दन, मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिकादि सब सूधा शरीर रक्खें। वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे। जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो, उस समय अपना पायु, मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रिय को ऊपर संकोच और वीर्य को खैंचकर स्त्री गर्भाशय में स्थिर करे। तत्पश्चात् थोड़ा ठहरके स्नान करे। यदि शीतकाल हो तो प्रथम केसर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, छोटी

दो खण्ड आँबाहलदी, दूसरी खाने की हलदी, चन्दन, मुरा (यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है) कुष्ठ, जटामांसी, मोरवेल (यह भी नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), शिलाजित्, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ।

इन सब ओषधियों का चूर्ण करके, सब समभाग लेके, उदुम्बर के काष्ठपात्र में गाय के दूध के साथ मिला उनका दही जमा और उदुम्बर ही की लकड़ी की मन्थनी से मन्थन करके उसमें से मक्खन निकाल उसको ताय, घृत करके, उसमें सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिलाके अर्थात् सेर-भर दूध में छटांकभर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला, सिद्धकर, घी हुए पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक मासा केशर और एक-एक मासा जायफलादि भी मिलाके, नित्य प्रातःकाल उस घी में से नित्य होम ३२ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और पृष्ठ ४१ में लिखे हुए (विष्णुर्योनिं०) इत्यादि ७ सात मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भस्थापन क्रिया करनी हो उसके दिन में होम करके उसी घी को दोनों जने खीर अथवा भात के साथ मिलाके यथारुचि भोजन करें।

इलायची डाल गर्म कर रखे हुए शीतल दूध का यथेष्ट पान करके पश्चात् पृथक्-पृथक् शयन करें। यदि स्त्री-पुरुष को ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाए कि गर्भ स्थिर हो गया तो उसके दूसरे दिन, और जो गर्भ रहे का दृढ़ निश्चय न हो तो एक महीने के पश्चात् रजस्वला होने के समय स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थित हो गया है।

अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीने के आरम्भ में निम्नलिखित

इस प्रकार गर्भस्थापन करें तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे। यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत, गूलर के एक पात्र में जमाये हुए, दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे, क्योंकि—

''आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः॥''

यह छान्दोग्य० का वचन है, अर्थात् शुद्ध आहार जोकि मद्य-मांसादिरहित घृत, दुग्धादि, चावल, गेहूँ आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि, बल, पुरुषार्थ, आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है। इसलिए पूर्ण युवावस्था में विवाह कर इस प्रकार विधिकर प्रेमपूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल नित्यप्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होते जाएँ। जब रजस्वला होने के समय में १२-१३ दिन शेष रहें, तब शुक्लपक्ष में १२ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिलाके इसी खीर का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें और मिताहारी होकर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम सन्तान होवें। जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है, वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है। इसपर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें, क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि, नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है।

मन्त्रों से आहुति देवें*—

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा॥ १॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा॥ २॥
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा॥ ३॥

—ऋ० म० ५। सू० ७८। मं० ७-९॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽ एजति।
एवायं दशमास्योऽ अस्त्रजरायुणा सह स्वाहा॥ १॥

---

* यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जाएँ अर्थात् दो महीनों में दो बार गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाए, गर्भस्थिति न होवे, तो तीसरे महीने में जब ऋतुकाल समय आवे तब पुष्यनक्षत्रयुक्त ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे, तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा और यव के दाणों को सेकके पीसके दो मासा लेके इन दोनों को एकत्र करके पत्नी के हाथ में देके उससे पति पूछे— "**किं पिबसि**"। इस प्रकार तीन बार पूछे, और स्त्री भी अपने पति को "**पुंसवनम्**" इस वाक्य को तीन बार बोलके उत्तर देवे और उसका प्राशन करे। इसी रीति से पुनः-पुनः तीन बार विधि करना। तत्पश्चात् सङ्खाहूलि वा भटकटाई ओषधि को जल में महीन पीसके उसका रस कपड़े में छानके पति पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिञ्चन करे। और पति—

ओम् इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती।
अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम्॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करें। यह सूत्रकार का मत है।

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी।
अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा॥ २॥
—यजुः० अ० ८। मं० २८, २९॥

पुमाꣳ सौ मित्रावरुणौ पुमाꣳ सावश्विनावुभौ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा॥ १॥
पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः।
पुमाꣳ सं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताꣳ स्वाहा॥ २॥
—सामवेदे॥

इन मन्त्रों से आहुति देकर पूर्वलिखित सामान्यप्रकरण की शान्त्याहुति देके, पुनः ३६ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे पूर्णाहुति देवें। पुनः स्त्री के भोजन-छादन का सुनियम करे। कोई मादक मद्य आदि, रेचक हरीतकी आदि, क्षार अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्ची आदि स्त्री कभी न खावे, किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि, चावल, मिष्ट, दधि, गेहूँ, उर्द, मूँग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावें। उसमें ऋतु-ऋतु के मसाले—गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि और सर्दी में केशर, कस्तूरी आदि डालकर खाया करे। युक्ताहार-विहार सदा किया करे। दूध में सुंठी और ब्राह्मी ओषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे, जिससे सन्तान अतिबुद्धिमान्, रोगरहित, शुभ गुण-कर्म-स्वभाववाला होवे॥

॥ इति गर्भाधानविधिः समाप्तः॥

अथ पुंसवनम्

'पुंसवन' संस्कार का समय गर्भस्थिति-ज्ञान हुए समय से दूसरे वा तीसरे महीने में है। उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिए, जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे। यावत् बालक के जन्म हुए पश्चात् दो महीने न बीत जावें, तबतक पुरुष ब्रह्मचारी रहकर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। भोजन-छादन, शयन-जागरणादि व्यवहार उसी प्रकार से करे, जिससे वीर्य स्थिर रहे और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे।

अत्र प्रमाणानि

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे॥ १॥
पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः।
पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताम्॥ २॥
—सामवेदे॥

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि॥ १॥
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत्॥ २॥
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत्।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह॥ ३॥
—अथर्व० का० ६। सू० ११॥

इन मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि पुरुष को वीर्यवान्

होना चाहिए।

इसमें आश्वलायनगृह्यसूत्र का प्रमाण—

अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजीतामोषधीं नस्तः करोति॥ १॥

प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैके ॥ २॥

गर्भ के दूसरे वा तीसरे महीने में वटवृक्ष की जटा वा उसकी पत्ती लेके स्त्री के दक्षिण नासापुट से सुँघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गुडच जो गिलोय वा ब्राह्मी ओषधि खिलावे।

ऐसा ही पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण है—

अथ पुंसवनं पुरा स्पन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा॥

इसके अनन्तर 'पुंसवनं' उसको कहते हैं, जो पूर्व ऋतुदान देकर गर्भस्थिति से दूसरे वा तीसरे महीने में पुंसवन-संस्कार किया जाता है। इसी प्रकार गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी लिखा है।

अथ क्रियारम्भः—पृष्ठ ९ से २१वें पृष्ठ के शान्तिकरणपर्यन्त कहे प्रमाणे (विश्वानि देव०) इत्यादि चारों वेदों के मन्त्रों से यजमान और पुरोहितादि ईश्वरोपासना करें और जितने पुरुष वहाँ उपस्थित हों, वे भी परमेश्वरोपासना में चित्त लगावें और पृष्ठ १३-१७ में कहे प्रमाणे स्वस्तिवाचन तथा पृष्ठ १८-२१ में लिखे प्रमाणे शान्तिकरण करके पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे यज्ञदेश, यज्ञशाला तथा पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे यज्ञकुण्ड, यज्ञसमिधा, होम के द्रव्य और स्थालीपाक आदि करके और पृष्ठ ३०-३२ में लिखे प्रमाणे (अयन्त इध्म०) इत्यादि [इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान], (ओम् अदिते०) इत्यादि चार [मन्त्रों से] मन्त्रोक्त कर्म [जल-प्रोक्षण] और आघारावाज्यभागाहुति ४ तथा व्याहृति आहुति ४ और पृष्ठ ३२ में [लिखे प्रमाणे]

(ओं प्रजापतये स्वाहा), पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे (ओं यदस्य कर्मणो०) दो आहुति देकर नीचे लिखे हुए दोनों मन्त्रों से दो आहुति घृत की देवें—

ओम् आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान् बाण इवेषुधिम्।
आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा॥ १॥
ओम् अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा॥ २॥

इन दोनों मन्त्रों को बोलके दो आहुति किये पश्चात् एकान्त में पत्नी के हृदय पर हाथ धरके यह निम्नलिखित मन्त्र पति बोले—

ओम् यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ।
मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं माहं पौत्रमघं नियाम्॥

तत्पश्चात् पृष्ठ ३६-३७ में लिखे प्रमाणे सामवेद का महावामदेव्यगान गाके जो-जो पुरुष वा स्त्री संस्कार-समय पर आये हों, उनको विदा कर दे।

पुनः वटवृक्ष के कोमल कूपल और गिलोय को महीन बाँट, कपड़े में छान, गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासापुट में सुँघावे। तत्पश्चात्—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ १॥

—यजुः० अ० १३। मं० ४॥

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥ २॥

—यजुः० अ० ३१। मं० १७॥

इन दो मन्त्रों को बोलके पति अपनी गर्भिणी पत्नी के गर्भाशय पर हाथ धरके यह मन्त्र बोले—

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽआत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत॥

—य० अ० १२। मं० ४॥

इसके पश्चात् स्त्री सुनियम, युक्ताहार-विहार करे। विशेषकर गिलोय, ब्राह्मी ओषधि और सुंठी को दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी खाया करे और अधिक शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक हरड़े आदि न खावे। सूक्ष्म आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभादि में न फँसे, चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे इत्यादि शुभाचरण करे॥

॥ इति पुंसवनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ सीमन्तोन्नयनम्

अब तीसरा संस्कार 'सीमन्तोन्नयन' कहते हैं, जिससे गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट, आरोग्य, गर्भ स्थिर, उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे। इसमें आगे प्रमाण लिखते हैं—

चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम्॥ १॥

आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्॥ २॥

अथास्यै युग्मेन शलालुग्रप्सेन त्र्येण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशपिञ्जूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवःस्वरोमिति त्रिः चतुर्वा॥ —यह आश्वलायनगृह्यसूत्र॥

पुंसवनवत् प्रथमे गर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा॥

—यह पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण॥

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्र में भी लिखा है।

अर्थ—गर्भमास से चौथे महीने में शुक्लपक्ष में जिस दिन मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो, उसी दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करें और पुंसवन-संस्कार के तुल्य छठे, आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष, नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के दिन सीमन्तोन्नयन-संस्कार करें ।

अथ विधिः—इसमें प्रथम ९-३१ पृष्ठ तक का विधि करके (अदितेऽनुमन्यस्व) इत्यादि पृष्ठ ३२ में लिखे प्रमाण वेदी के पूर्वादि दिशाओं में जल सेचन करके—

ओम् देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु स्वाहा॥ —य० अ० ३०। मं० ७॥

इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल-सेचन करके आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार—दोनों मिलके आठ आहुति पृष्ठ ३२-३३ में लिखे प्रमाणे करके—

ओम् प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि॥

अर्थात् चावल, तिल और मूँग इन तीनों को समभाग लेके—

ओम् प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥

अर्थात् धोके इनकी खिचड़ी बना उसमें पुष्कल घी डालके निम्नलिखित मन्त्रों से आठ आहुति देवें—

ओं धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमुक्षितम्। वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवतिः स्वाहा॥

इदं धात्रे—इदन्न मम॥ १॥

ओं धाता प्रजानामुत राय ईशे धातेदं विश्वं भुवनं जजान। धाता कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे धात्र इद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा॥ इदं धात्रे—इदन्न मम॥ २॥

ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना। सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं स्वाहा॥ इदं राकायै—इदन्न मम॥ ३॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे ररीणा स्वाहा॥ इदं राकायै—इदन्न मम॥ ४॥

—ऋ० मं० २। सू० ३२। मं० ४, ५॥

नेजमेष परा पत सुपुत्रः पुनरा पत। अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा धेहि यः पुमान्स्वाहा॥ ५॥

यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमा दधे।
एवं तं गर्भमा धेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा॥ ६॥
विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम्।
पुमांसं पुत्राना धेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा॥ ७॥

इन सात मन्त्रों से खिचड़ी की सात आहुति देके, पुनः (भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्व०) पृष्ठ ३४ में लिखित इससे एक, सब मिलाके आठ आहुति देवें और पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे (ओं प्रजापतये०) मन्त्र से एक भात की और पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे (ओं यदस्य कर्मणो०) मन्त्र से एक खिचड़ी की आहुति देवें। तत्पश्चात् (ओं त्वन्नो अग्ने०) पृष्ठ ३४-३५ में लिखे प्रमाणे आठ घृत की आहुति और (ओं भूरग्नये०) पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे चार, व्याहृतिमन्त्रों से चार आज्याहुति देकर पति और पत्नी एकान्त में जाके उत्तमासन पर बैठ पति पत्नी के पश्चात्=पृष्ठ की ओर बैठ—

ओम् सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु ।
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः॥ १॥
—य० अ० ६। मं० २२॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्।
कविः सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥ २॥
—य० अ० ७। मं० २४॥

ओम् अयमूर्जावतो वृक्ष, ऊर्जीव फलिनी भव।
पर्णं वनस्पतेऽनु त्वाऽनु त्वा सूयताञ्छरयिः॥ ३॥
ओं येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय।
तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि॥ ४॥

ओं राकामहꣳ सुहवाꣳ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना। सीव्यत्वपः सूच्याछिद्यमानया ददातु वीरꣳ शतदायमुख्यम्॥५॥

ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा॥६॥

किं पश्यसि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः॥७॥

इन मन्त्रों को पढ़के पति अपने हाथ से स्वपत्नी के केशों में सुगन्धित तेल डाल, कंघे से सुधार, हाथ में उदुम्बर अथवा अर्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा की मृदु छीपी वा शाही पशु के काँटे से अपनी पत्नी के केशों को स्वच्छ कर पट्टी निकाल और पीछे की ओर जूड़ा सुन्दर बाँधकर यज्ञशाला में आवें। उस समय वीणा आदि बाजे बजवावें। तत्पश्चात् पृष्ठ ३६-३७ में लिखे प्रमाणे सामवेद का गान करें। पश्चात्—

ओम् सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः।

अविमुक्तचक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यम् असौ*॥

आरम्भ में इस मन्त्र का गान करके, पश्चात् अन्य मन्त्रों का गान करें।

तत्पश्चात् पूर्व आहुतियों के देने से बची हुई खिचड़ी में पुष्कल घृत डालके गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे। उस समय पति स्त्री से पूछे—'**किं पश्यसि**'? स्त्री उत्तर देवे—"**प्रजां पश्यामि**"।

तत्पश्चात् एकान्त में वृद्ध, कुलीन, सौभाग्यवती, पुत्रवती,

---

* यहाँ किसी नदी का नामोच्चारण करें।

गर्भिणी अपने कुल की और ब्राह्मणों की स्त्रियाँ बैठें। प्रसन्नवदन और प्रसन्नता की बातें करें और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को खावे और वे वृद्ध समीप बैठी हुई उत्तम स्त्री लोग ऐसा आशीर्वाद देवें—

ओम् वीरसूस्त्वं भव, जीवसूस्त्वं भव, जीवपत्नी त्वं भव॥

ऐसे शुभ, माङ्गलिक वचन बोलें। तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथायोग्य सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को विदा करें॥

॥ इति सीमन्तोन्नयनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ जातकर्म-संस्कारविधिः

इसका समय, प्रमाण और कर्मविधि इस प्रकार करें।

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति॥

इत्यादि पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण है।

इसी प्रकार आश्वलायन, गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी लिखा है।

जब प्रसव होने का समय आवे, तब निम्नलिखित मन्त्र से गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करे—

ओम् एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति।
एवायं दशमास्यो अस्त्रज्जरायुणा सह॥ १॥

—यजुः० अ० ८। मं० २८॥

इससे मार्जन करने के पश्चात्—

ओम् अवैतु पृश्निशेवलः शुने जराय्वत्तवे।
नैव माꣳसेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतनमव
जरायु पद्यताम्॥

इस मन्त्र का जप करके पुनः मार्जन करे।

कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी
हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत्॥

जब पुत्र का जन्म होवे तब प्रथम दायी आदि स्त्री लोग बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान,

आँख आदि में से मल को शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ, शुद्ध कर पिता के गोद में बालक को देवें। पिता जहाँ वायु और शीत का प्रवेश न हो, वहाँ बैठके एक बीताभर नाड़ी को छोड़, ऊपर सूत से बाँधके उस बन्धन के ऊपर से नाड़ीछेदन करके किञ्चित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा, शुद्ध वस्त्र से पोंछ, नवीन शुद्ध वस्त्र पहिना जो प्रसूता-घर के बाहर पूर्वोक्त प्रकार कुण्ड कर रखा हो अथवा तांबे के कुण्ड में समिधा पूर्वलिखित प्रमाणे चयन कर पूर्वोक्त सामान्यविध्युक्त पृष्ठ ३०-३२ में कहे प्रमाणे अग्न्याधान, समिदाधान करके, अग्नि को प्रदीप्त करके सुगन्धित घृतादि वेदी के पास रखके, हाथ-पग धोके एक पीठासन अर्थात् शुभासन पुरोहित* के लिए कुण्ड के दक्षिण भाग में रक्खे, वह उसपर उत्तराभिमुख बैठे और यजमान अर्थात् बालक का पिता हाथ-पग धोके वेदी के पश्चिम भाग में आसन बिछा, उसपर उपवस्त्र ओढ़के पूर्वाभिमुख बैठे तथा सब सामग्री अपने और पुरोहित के पास रखके पुरोहित पद के स्वीकार के लिए बोले—

ओम् आ वसोः सदने सीद॥

तत्पश्चात् पुरोहित—**ओम् सीदामि॥**

बोलके आसन पर बैठके, पृष्ठ ३१ में लिखे प्रमाणे अयं त इध्म० आदि चार मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे और प्रदीप्त समिधा पर पूर्वोक्त सिद्ध किये घी की पृष्ठ ३३-३४ में लिखे प्रमाणे **आघारावाज्यभागाहुति** चार और **व्याहृति आहुति** चार दोनों मिलके आठ आज्याहुति देनी। तत्पश्चात्—

---

* धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधि का पूर्णरीति से जाननेहारा, विद्वान्, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।

ओं या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति। तां त्वा घृतस्य धारया यजे सꣳराधनीमहम्। सꣳराधिन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा॥ इदं संराधिन्यै—इदन्न मम॥ १॥

ओं विपश्चित् पुच्छमभरत् तद्धाता पुनराहरत्। परेहि त्वं विपश्चित् पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा। इदं धात्रे—इदन्न मम॥ २॥

इन दोनों मन्त्रों से दो आज्याहुति करके, पृष्ठ ३६-३७ में लिखे प्रमाणे **महावामदेव्यगान** करके, ९-१२ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे **ईश्वरोपासना** करें।

तत्पश्चात् घी और मधु दोनों बरोबर मिलाके, जो प्रथम सोने की शलाका कर रखी हो, उससे बालक की जीभ पर "**ओ३म्**" यह अक्षर लिखके उसके दक्षिण कान में "**वेदोऽसीति**" तेरा गुप्त नाम वेद है' ऐसा सुनाके पूर्व मिलाये हुए घी और मधु को उस सोने की शलाका से बालक को नीचे लिखे मन्त्र से थोड़ा-थोड़ा चटावे—

ओं प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेदं सवित्रा प्रसूतं मघोनाम्। आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन्॥ १॥

ओम् भूस्त्वयि दधामि॥ २॥

ओं भुवस्त्वयि दधामि॥ ३॥

ओं स्वस्त्वयि दधामि॥ ४॥

ओं भूर्भुवः स्वस्सर्वं त्वयि दधामि॥ ५॥

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा॥ ६॥

इन प्रत्येक मन्त्र से छह बार घृत-मधु प्राशन कराके तत्पश्चात् चावल और जव को शुद्ध कर पानी से पीस, वस्त्र से छान, एक पात्र में रखके हाथ के अंगूठा और अनामिका से थोड़ा-सा लेके—

ओम् इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम्॥

इस मन्त्र को बोलके बालक के मुख में एक बिन्दु छोड़ देवे। यह एक गोभिलीयगृह्यसूत्र का मत है, सबका नहीं।

पश्चात् बालक का पिता बालक के दक्षिण कान में मुख लगाके निम्नलिखित मन्त्र बोले—

ओं मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती।
मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ॥ १॥
ओम् अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्माँस्तेन
त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ २॥
ओं सोम आयुष्मान्त्स ओषधीभिरायुष्माँस्तेन०*॥ ३॥
ओं ब्रह्माऽऽयुष्मत् तद् ब्राह्मणैरायुष्मत् तेन०॥ ४॥
ओं देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन०॥ ५॥
ओम् ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन०॥ ६॥
ओं पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन०॥ ७॥
ओं यज्ञ आयुष्मान्त्स दक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन०॥ ८॥
ओं समुद्र आयुष्मान्त्स स्रवन्तीभिरायुष्माँस्तेन
त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ९॥

---

* यहाँ पूर्व मन्त्र का शेष भाग (त्वा) इत्यादि उत्तर मन्त्रों के पश्चात् बोले।

इन नव मन्त्रों का जप करे। इसी प्रकार बाएँ कान पर मुख धर ये ही नव मन्त्र पुनः जपे।

इसके पीछे बालक के कन्धों पर कोमल स्पर्श से, अर्थात् बालक के स्कन्धों पर हाथ का बोझ न पड़े, इस प्रकार हाथ धरके निम्नलिखित मन्त्र बोले—

ओम् इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वादमानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥ १॥

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः। अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्॥ २॥

ओम् अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। वेदो वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्॥ ३॥

इन तीन मन्त्रों को बोले। तत्पश्चात्—

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्॥

इस मन्त्र का तीन बार जप करे।

तत्पश्चात् बालक के स्कन्धों पर से हाथ उठा ले और जिस जगह पर बालक का जन्म हुआ हो वहाँ जाके—

ओं वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम्॥ १॥

इस मन्त्र का जप करे। तथा—

यत्ते सुसीमे हृदयꣳ हितमन्तः प्रजापतौ।
वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम्॥ २॥
यत् पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्।
वेदामृतस्याहं नाम माहं पौत्रमघꣳ रिषम्॥ ३॥
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापतिः।
यथायं न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि॥ ४॥
यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳ श्रितम्।
तदहं विद्वाꣳस्तत् पश्यन्माहं पौत्रमघꣳ रुदम्॥ ५॥

इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ सुगन्धित जल से प्रसूता के शरीर का मार्जन करे।

कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि ।
आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥ ६॥

स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वा-होरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परि-दत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सर-स्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ॥ ७॥

इन मन्त्रों को पढ़के बालक को आशीर्वाद देवे। पुनः—

अङ्गादङ्गात् सꣳस्त्रवसि हृदयादधिजायसे।
प्राणं ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम्॥ ८॥
अङ्गादङ्गात् संभवसि हृदयादधिजायसे।
वेदो वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्॥ ९॥
अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव।
आत्माऽसि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम्॥ १०॥
पशूनां त्वा हिङ्कारेणाभिजिघ्राम्यसौ॥ ११॥

इन मन्त्रों को पढ़के पुत्र के शिर का आघ्राण करे अर्थात् सूँघे। इसी प्रकार जब-जब परदेश से आवे वा जावे, तब-तब भी इस क्रिया को करे, जिससे पुत्र और पिता-माता में अति प्रेम बढ़े।

ओम् इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः।

सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान्वीरवतोऽकरत्॥

इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करके, प्रसूता स्त्री को प्रसन्न करके, पश्चात् स्त्री के दोनों स्तन किञ्चित् उष्ण, सुगन्धित जल से प्रक्षालन कर पोंछके—

ओम् इमꣳ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये।

उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमा विशस्व॥

इस मन्त्र को पढ़के दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में देवे। इसके पश्चात्—

ओं यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।

येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः॥

इस मन्त्र को पढ़के वाम स्तन बालक के मुख में देवे। तत्पश्चात्—

ओम् आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ।

एवमस्याꣳ सूतिकायाꣳ सपुत्रिकायां जाग्रथ॥

इस मन्त्र से प्रसूता स्त्री के शिर की ओर एक कलश जल से पूर्ण भरके दश रात्रि तक वहीं धर रक्खे तथा प्रसूता स्त्री प्रसूत-स्थान में दश दिन तक रहे। वहाँ नित्य सायं और प्रातःकाल सन्धिवेला में निम्नलिखित दो मन्त्रों से भात और सरसों मिलाके दश दिन तक बराबर आहुतियाँ देवे—

ओम् शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा॥ इदं शण्डामर्काभ्यामुपवीराय शौण्डिकेयायोलूखलाय मलिम्लुचाय द्रोणेभ्यश्च्यवनाय—इदन्न मम॥ १॥

ओम् आलिखन्ननिमिषः किंवदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा॥ इदमालिखतेऽनिमिषाय किंवदन्त्य उपश्रुतये हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणाय च्यवनाय—इदन्न मम॥ २॥

इन मन्त्रों से १० दिन तक होम करके पश्चात् अच्छे-अच्छे विद्वान्, धार्मिक, वैदिक मत वाले बाहर खड़े रहकर और बालक का पिता भीतर रहकर आशीर्वादरूपी नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ आनन्दित होके करें—

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः।
अमर्त्या मर्त्याँअभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः॥ १॥
—अथर्व० कां० ६। अनु० ४। सू० ४१॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन॥ २॥
—अथर्व० कां० १२। अनु० २। मं० २३॥

विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्वावन्मय्यस्तु पुष्टम्॥ ३॥
—अथर्व० कां० १८। अनु० ३। मं० ६१॥

॥ इति जातकर्मसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ नामकरणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

अत्र प्रमाणम्—नाम चास्मै दद्युः ॥ १ ॥

घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरम् ॥ २ ॥

चतुरक्षरं वा ॥ ३ ॥

द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ ४ ॥

युग्मानि त्वेव पुंसाम् ॥ ५ ॥

अयुजानि स्त्रीणाम् ॥ ६ ॥

अभिवादनीय च समीक्षेत तन्मातापितरौ

विदध्यातामोपनयनात् ॥ ७ ॥

—इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु ॥

दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति—द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं कुर्यान्न तद्धितम्, अयुजाक्षरमाकारान्तञ्च स्त्रियै। शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य ॥

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्र में भी लिखा है ॥

अर्थात् जन्मे हुए बालक का सुन्दर नाम धरे।

नामकरण का काल—जिस दिन जन्म हो उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ग्यारहवें वा एक सौ एकवें अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो, नाम धरे।

जिस दिन नाम धरना हो उस दिन अति प्रसन्नता से इष्ट-मित्र, हितैषी लोगों को बुला यथावत् सत्कार कर क्रिया का आरम्भ यजमान—बालक का पिता और ऋत्विज करें।

पुनः पृष्ठ ९-३४ में लिखे प्रमाणे सब मनुष्य **ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण** और सामान्य प्रकरणस्थ सम्पूर्ण विधि करके **आघारावाज्यभागाहुति** चार और **व्याहृति आहुति** चार और पृष्ठ ३४-३५ में लिखे प्रमाणे **(त्वन्नो अग्ने०)** इत्यादि आठ मन्त्रों से आठ आहुति, अर्थात् सब मिलाके १६ घृताहुति करें।

तपश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा, शुद्ध वस्त्र पहनाके उसकी माता कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिणभाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशा में रखके बालक के पिता के हाथ में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे होकर उत्तरभाग में पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग करके अपनी पत्नी को देवे। पश्चात् जो उसी संस्कार के लिए कर्त्तव्य हो, उस प्रथम प्रधानहोम को करे। पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब शाकल्य सिद्ध कर रक्खे। उसमें से प्रथम घी का चमचा भरके—

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥

इस मन्त्र से एक आहुति देकर पीछे जिस तिथि, जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से चार आहुति देनी, अर्थात् एक तिथि, दूसरी तिथि के देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से, अर्थात् तिथि, नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोलके चार घी की आहुति देवे। जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में

हुआ हो तो—

ओं प्रतिपदे स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा। ओम् अश्विन्यै स्वाहा। ओम् अश्विभ्यां स्वाहा*॥

तत्पश्चात् पृष्ठ ३३ में लिखी हुई **स्विष्टकृत्-मन्त्र** से एक आहुति और पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे चार **व्याहृति** आहुति दोनों मिलके पाँच आहुति देके तत्पश्चात् माता बालक को लेके शुभ आसन पर बैठे और पिता बालक के नासिका-द्वार से बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करके—

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो
वीरैः सुपोषः पोषैः॥ —अ० ७। मं० २९॥

ओम् कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि।
आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ॥

---

* **तिथि देवताः**—१. ब्रह्मन्। २. त्वष्टृ। ३. विष्णु। ४. यम। ५. सोम। ६. कुमार। ७. मुनि। ८. वसु। ९. शिव। १०. धर्म। ११. रुद्र। १२. वायु। १३. काम। १४. अनन्त। १५. विश्वेदेव। ३०. पितर। **नक्षत्र देवताः**—अश्विनी—अश्वी। भरणी—यम। कृत्तिका—अग्नि। रोहिणी—प्रजापति। मृगशीर्ष—सोम। आर्द्रा—रुद्र। पुनर्वसु—अदिति। पुष्य—बृहस्पति। आश्लेषा—सर्प। मघा—पितृ। पूर्वाफाल्गुनी—भग। उत्तराफाल्गुनी—अर्यमन्। हस्त—सवितृ। चित्रा—त्वष्टृ। स्वाति—वायु। विशाखा—इन्द्राग्नी। अनुराधा—मित्र। ज्येष्ठा—इन्द्र। मूल—निर्ऋति। पूर्वाषाढ़ा—अप्। उत्तराषाढ़ा—विश्वेदेव। श्रवण—विष्णु। धनिष्ठा—वसु। शतभिषज्—वरुण। पूर्वाभाद्रपदा—अजपाद्। उत्तराभाद्रपदा—अहिर्बुध्न्य। रेवती—पूषन्॥

जो यह "असौ" पद है इसके स्थान में बालक का ठहराया हुआ नाम अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षर का वा चार अक्षर का, घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पाँचों वर्गों के आरम्भ के दो-दो अक्षर छोड़के तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और य र ल व—ये चार वर्ण नाम में अवश्य आवें*।

जैसे—देव अथवा जयदेव। ब्राह्मण हो तो देवशर्मा, क्षत्रिय हो तो देववर्मा, वैश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो स्त्री हो तो एक, तीन वा पाँच अक्षर का नाम रक्खे—श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि। नामों को प्रसिद्ध बोलके, पुनः "**असौ**" पद के स्थान में बालक

---

* ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म—ये स्पर्श और य, र, ल, व—ये चार अन्तःस्थ और ह एक ऊष्मा, इतने अक्षर नाम में होने चाहिएँ और स्वरों में से कोई भी स्वर हो। जैसे—भद्रः, भद्रसेनः, देवदत्तः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, हरिदेवः इत्यादि। पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिए तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खें। अन्त्य में दीर्घ स्वर और तद्धितान्त भी होवे—जैसे—श्रीः ह्रीः, यशोदा, सुखदा, गान्धारी, सौभाग्यवती, कल्याणक्रोडा इत्यादि, परन्तु स्त्रियों के इस प्रकार के नाम कभी न रक्खें, उसमें प्रमाण—

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥ —मनुस्मृतौ।

(ऋक्ष) रोहिणी, रेवती इत्यादि, (वृक्ष) चम्पा, तुलसी इत्यादि, (नदी) गङ्गा, यमुना, सरस्वती इत्यादि, (अन्त्य) चाण्डाली इत्यादि, (पर्वत) विन्ध्याचला, हिमालया इत्यादि, (पक्षी) कोकिला, हंसा इत्यादि, (अहि) सर्पिणी, नागी इत्यादि, (प्रेष्य) दासी, किङ्करी इत्यादि, (भयंकर) भीमा, भयंकरी, चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं।

का सम्बोधनान्त नाम धरके पुनः (**ओम् कोऽसि०**) ऊपर लिखित मन्त्र बोलना।

ओं स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु, असौ॥

इन मन्त्रों से बालक को जैसा जातकर्म में लिख आये हैं वैसे आशीर्वाद देवें। इस प्रमाणे बालक का नाम रखके संस्कार में आये हुए मनुष्यों को वह नाम सुनाके पृष्ठ ३६-३७ में लिखे प्रमाणे **महावामदेव्य गान** करें।

तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को आदर-सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पृष्ठ ९-१२ में लिखे प्रमाणे परमेश्वर की स्तुतिप्रार्थनोपासना करके बालक को आशीर्वाद देवें कि—

''हे बालक! त्वमायुष्मान् वर्च्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः।''

हे बालक! [तू] आयुष्मान्, विद्यावान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुरुषार्थी, प्रतापी, परोपकारी, श्रीमान् हो॥

॥ इति नामकरणसंस्कारविधिः समाप्तः॥

अथ निष्क्रमणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

'निष्क्रमण' संस्कार उसको कहते हैं कि जो बालक को घर से जहाँ का वायु, स्थान शुद्ध हो, वहाँ भ्रमण कराना होता है। उसका समय जब अच्छा देखें तभी बालक को बाहर घुमावें। अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावें। इसमें प्रमाण—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति—तच्चक्षुरिति॥

—यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है॥

जननाद्यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायाम्॥

—यह पारस्करगृह्यसूत्र में भी है॥

अर्थः—निष्क्रमण-संस्कार के काल के दो भेद हैं—एक बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्लपक्ष की तृतीया और दूसरा चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि में यह संस्कार करे।

उस संस्कार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा, शुद्ध-सुन्दर वस्त्र पहनावे। पश्चात् बालक को यज्ञशाला में बालक की माता ले-आके पति के दक्षिण पार्श्व में होकर पति के सामने आकर बालक का मस्तक उत्तर और छाती ऊपर अर्थात् चित्ता रखके पति के हाथ में देवे, पुनः पति के पीछे की ओर घूमके बाएँ पार्श्व में पूर्वाभिमुख बैठे।

ओं यत्ते सुसीमे हृदयꣳ हितमन्तः प्रजापतौ।
वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम्॥ १॥
ओं यत् पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्।
वेदामृतस्याहं नाम माहं पौत्रमघꣳ रिषम्॥ २॥

ओम् इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापती।

यथायं न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि॥ ३॥

इन तीन मन्त्रों से परमेश्वर की आराधना करके पृष्ठ ९-३४ में लिखे प्रमाणे **परमेश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण** आदि और सामान्यप्रकरणोक्त समस्त विधि कर और पुत्र को देखके इन निम्नलिखित तीन मन्त्रों से पुत्र के शिर का स्पर्श करे—

ओम् अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधिजायसे।

आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्॥ १॥

ओं प्रजापतेष्ट्वा हिङ्कारेणावजिघ्रामि ।

सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ २॥

गवां त्वा हिङ्कारेणावजिघ्रामि ।

सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ ३॥

तथा निम्नलिखित मन्त्र बालक के दक्षिण कान में जपे—

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः।

अस्मे शतꣳ शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्॥ १॥

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।

पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥ २॥

इस मन्त्र को वाम कान में जपके पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन करके स्त्री के शिर का स्पर्श करे। तत्पश्चात् आनन्दपूर्वक उठके बालक को सूर्य का दर्शन करावे और निम्नलिखित मन्त्र वहाँ बोले—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

इस मन्त्र को बोलके थोड़ा-सा शुद्ध वायु में भ्रमण कराके यज्ञशाला में लावे। सब लोग—

"त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः"॥

इस वचन को बोलके आशीर्वाद देवें।

तत्पश्चात् बालक के माता और पिता संस्कार में आये हुए स्त्रियों और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें।

तत्पश्चात् जब रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान हो, तब बालक की माता लड़के को शुद्ध वस्त्र पहना दहिनी ओर से आगे आके पिता के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवे और बालक की माता दाहिनी ओर से लौटकर बाईं ओर आ, जल की अञ्जलि भरके चन्द्रमा के सम्मुख खड़ी रहके—

ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳ श्रितम्।
तदहं विद्वाꣳस्तत् पश्यन् माहं पौत्रमघꣳ रुदम्॥

इस मन्त्र से परमात्मा की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे।

तत्पश्चात् बालक की माता पुनः पति के पृष्ठ की ओर से पति के दाहिने पार्श्व से सम्मुख आके पति से पुत्र को लेके पुनः पति के पीछे होकर बाईं ओर आ बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रखके खड़ी रहे और बालक का पिता जल की अञ्जलि भर (ओम् यददश्च०) इसी मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़के दोनों प्रसन्न होकर घर में आवें।

॥ इति निष्क्रमणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथान्नप्राशनविधिं वक्ष्यामः

'अन्नप्राशन' संस्कार तभी करे जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे। इसमें आश्वलायनगृह्यसूत्र का प्रमाण—

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्॥ १ ॥

घृतौदनं तेजस्कामः॥ २ ॥

दधिमधूघृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत्॥ ३ ॥

इसी प्रकार पारस्करगृह्यसूत्रादि में भी है॥

छठे महीने बालक को अन्नप्राशन करावे। जिसको तेजस्वी बालक करना हो, वह घृतयुक्त भात अथवा दही, सहत और घृत तीनों भात के साथ मिलाके निम्नलिखित विधि से अन्नप्राशन करावे, अर्थात् पूर्वोक्त पृष्ठ ९-२१ में कहे हुए सम्पूर्ण विधि को करके जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो, उसी दिन यह संस्कार करे और निम्न लिखे प्रमाणे भात सिद्ध करे—

ओम् प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥ १ ॥

ओम् अपानाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥ २ ॥

ओम् चक्षुषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥ ३ ॥

ओम् श्रोत्राय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥ ४ ॥

ओम् अग्नये स्विष्टकृते त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥ ५ ॥

इन पाँच मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि चावलों को धो, शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भात में यथायोग्य घृत भी डाल देना।

जब चावल अच्छे प्रकार पक जावें, तब उतार थोड़े ठण्डे हुए पश्चात् होमस्थाली में—

ओम् प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ १॥
ओम् अपानाय त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ २॥
ओम् चक्षुषे त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ ३॥
ओम् श्रोत्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ ४॥
ओम् अग्नये स्विष्टकृते त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ ५॥

इन पाँच मन्त्रों से कार्यकर्त्ता यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजों को पात्र में पृथक्-पृथक् देके पृष्ठ ३०-३५ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान, समिदाधानादि करके प्रथम आघारावाज्य-भागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार मिलके ८ घृत की आहुति देके, पुनः उस पकाये हुए भात की आहुति नीचे लिखे हुए मन्त्रों से देवे—

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहा॥
इदं वाचे—इदन्न मम॥ १॥

वाजो नोऽअद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवाँऽ ऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वाऽआशा वाजपतिर्जयेयꣳस्वाहा॥ इदं वाचे वाजाय—इदन्न मम॥ २॥

इन दो मन्त्रों से दो आहुति देवें। तत्पश्चात् उसी भात में और घृत डालके—

ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा॥ इदं प्राणाय—इदन्न मम॥ १॥
ओमपानेन गन्धानशीय स्वाहा॥ इदमपानाय—इदन्न मम॥ २॥
ओं चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा॥ इदं चक्षुषे—इदन्न मम॥ ३॥
ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा॥ इदं श्रोत्राय—इदन्न मम॥ ४॥

इन मन्त्रों से चार आहुति देके (ओं यदस्य कर्मणो०) पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाण स्विष्टकृत् आहुति एक देवे। तत्पश्चात्

पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति चार और पृष्ठ ३३-३४ में लिखे प्रमाणे (ओम् त्वन्नो०) इत्यादि से आठ आज्याहुति मिलके बारह आहुति देवे।

उसके पीछे आहुति से बचे हुए भात में दही, मधु और उसमें घी यथायोग्य किञ्चित्-किञ्चित् मिलाके और सुगन्धियुक्त और भी चावल बनाये हुए थोड़े-से मिलाके बालक के रुचि प्रमाणे—

ओम् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रप्र दातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

इस मन्त्र को पढ़के थोड़ा-थोड़ा पूर्वोक्त भात बालक के मुख में देवे। यथारुचि खिला, बालक का मुख धो और अपने हाथ धोके पृष्ठ ३६-३७ में लिखे प्रमाणे महावामदेव्यगान करके, जो बालक के माता-पिता और अन्य वृद्ध स्त्री-पुरुष आये हों वे परमात्मा की प्रार्थना करके—

"त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः॥"

इस वाक्य से बालक को आशीर्वाद देके, पश्चात् संस्कार में आये हुए पुरुषों का सत्कार बालक का पिता और स्त्रियों का सत्कार बालक की माता करके सबको प्रसन्नतापूर्वक विदा करें॥

॥ इत्यन्नप्राशनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ चूडाकर्मसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

यह आठवाँ संस्कार 'चूडाकर्म' है, जिसको केशछेदन-संस्कार भी कहते हैं। इसमें आश्वलायनगृह्यसूत्र का मत ऐसा है—

तृतीये वर्षे चौलम्॥ १ ॥

उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलानां शरावाणि निदधाति॥ २ ॥

इसी प्रकार पारस्करगृह्यसूत्रादि में भी है—

सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम्॥

इसी प्रकार गोभिलीयगृह्यसूत्र का भी मत है॥

यह चूडाकर्म अर्थात् मुण्डन बालक के जन्म के तीसरे वर्ष वा एक वर्ष में करना। उत्तरायणकाल शुक्लपक्ष में जिस दिन आनन्द-मङ्गल हो, उस दिन यह संस्कार करे।

विधि—आरम्भ में पृष्ठ ९-३४ में लिखित विधि करके चार शरावे ले, एक में चावल, दूसरे में यव, तीसरे में उर्द और चौथे शरावे में तिल भरके वेदी के उत्तर में धर देवे। धरके पृष्ठ ३२ में लिखे प्रमाणे "**ओम् अदितेऽनुमन्यस्व**" इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीन बाजू और पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे '**ओम् देव सवितः प्रसुव०**' इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटकाके, पूर्व पृष्ठ ३०-३२ में लिखित **अग्न्याधान समिदाधान** कर अग्नि को प्रदीप्त करके जो समिधा प्रदीप्त हुई हो उसपर लक्ष देकर पृष्ठ ३२-३३ में लिखे प्रमाणे

आघारावाज्यभागाहुति चार और **व्याहृति आहुति** चार और पृष्ठ ३४ में लिखे प्रमाणे आठ **आज्याहुति**, सब मिलके सोलह आहुति देके, पृष्ठ ३४ में लिखे प्रमाणे "**ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०**" इत्यादि मन्त्रों से चार आज्याहुति प्रधान होम की देके, पश्चात् पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे **व्याहृति आहुति** चार और पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे **स्विष्टकृत्** मन्त्र से एक आहुति मिलके पाँच घृत की आहुति देवे।

इतनी क्रिया करके कर्मकर्त्ता परमात्मा का ध्यान करके नाई की ओर प्रथम देखके—

ओम् आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि। आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः॥ —अथर्व० कां० ६। सू० ६८॥

इस मन्त्र का जप करके, पिता बालक के पृष्ठ-भाग में बैठके किञ्चित् उष्ण और किञ्चित् ठण्डा जल दोनों पात्रों में लेके—

ओम् उष्णेन वाय उदकेनैधि॥

इस मन्त्र को बोलके दोनों पात्र का जल एक पात्र में मिला देवे। पश्चात् थोड़ा जल, थोड़ा माखन अथवा दही की मलाई लेके—

ओम् अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा।

चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे॥ १॥

—अथर्व० कां० ६। सू० ६८॥

ओं सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं

दीर्घायुत्वाय वर्चसे॥ २॥

इन मन्त्रों को बोलके, बालक के शिर के बालों में तीन बार हाथ फेरके केशों को भिगोवे। तत्पश्चात् कङ्घा लेके केशों को सुधारके इकट्ठा करे, अर्थात् बिखरे न रहे। तत्पश्चात्—

ओम् ओषधे त्रायस्वैनम्॥

इस मन्त्र को बोलके तीन दर्भ लेके दाहिनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबाके—

ओं विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि॥

इस मन्त्र से छुरे की ओर देखके—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिंसीः॥

इस मन्त्र को बोलके छुरे को दाहिने हाथ में लेवे। तत्पश्चात्—

ओं स्वधिते मैनꣳ हिंसीः॥ १॥

ओं निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥ २॥

इन दो मन्त्रों को बोलके उस छुरे और उन कुशाओं को केशों के समीप ले-जाके—

ओं येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान्॥ —अथर्व० का० ६। सू० ६८॥

इस मन्त्र को बोलके कुशासहित उन केशों को काटे* और वे काटे हुए केश और दर्भ शमीवृक्ष के पत्रसहित, अर्थात् यहाँ शमीवृक्ष के पत्र भी प्रथम से रखने चाहिएँ, उन सबको लड़के का पिता और लड़के की माँ एक शरावे में रक्खें और कोई केश छेदन करते समय उड़ा हो, उसको गोबर से उठाके

---

* केश-छेदन की रीति ऐसी है कि दर्भ और केश दोनों युक्ति से पकड़कर अर्थात् दोनों ओर से पकड़के बीच में से केशों को छुरे से काटे। यदि छुरे के बदले कैंची से काटे तो भी ठीक है।

शरावा में अथवा उसके पास रक्खें। तत्पश्चात् इसी प्रकार—

ओं येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत्।

तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये॥

इस मन्त्र से दूसरी बार केश का समूह दूसरी ओर का काटके उसी प्रकार शरावा में रक्खे। तत्पश्चात्—

ओं येन भूयश्च रात्र्यां ज्योक् च पश्याति सूर्यम्।

तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये॥

इस मन्त्र से तीसरी बार उसी प्रकार केशसमूह को काटके उपरि उक्त ३ [तीन] मन्त्रों—अर्थात् (ओं येनावपत्०), (ओं येन धाता०), (ओं येन भूयश्च०), और—

ओं येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे॥

इस एक, इन चार मन्त्रों को बोलके चौथी बार इसी प्रकार केशों के समूह को काटे, अर्थात् प्रथम दक्षिण बाजू के केश काटने का विधि पूर्ण हुए पश्चात् बायीं ओर के केश काटने का विधि करे। तत्पश्चात् उसके पीछे आगे के केश काटे।

परन्तु चौथी बार काटने में "येन पूषा०" इस मन्त्र के बदले—

ओं येन भूरिश्चरादिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये॥

यह मन्त्र बोल चौथी बार केश छेदन करे। तत्पश्चात्—

ओं त्र्यायुषं जमदग्ने कश्यपस्य त्र्यायुषम्।

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्॥

इस एक मन्त्र को बोलके शिर के पीछे के केश एक बार काटके इसी (ओम् त्र्यायुषं०) मन्त्र को बोलते जाना और ओंधे हाथ के पृष्ठ से बालक के शिर पर हाथ फेरके मन्त्र पूरा हुए पश्चात् छुरा नाई के हाथ में देके—

ओं यत्क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वसा वपसि केशान्।

शुन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः॥

इस मन्त्र को बोलके नापित से पथरी पर छुरे की धार तेज कराके नापित से बालक का पिता कहे कि—'इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिगो। सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर कर। कहीं छुरा न लगने पावे'। इतना कहके कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को ले-जा, उसके सम्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठाके जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे, परन्तु पाँचों ओर थोड़ा-थोड़ा केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे अथवा एक बार सब कटवा देवे, पश्चात् दूसरी बार के केश रखने अच्छे होते हैं।

जब क्षौर हो चुके, तब कुण्ड के पास पड़ा वा धरा हुआ देने के योग्य पदार्थ वा शरावा आदि कि जिनमें प्रथम अन्न भरा था, नापित को देवे और मुण्डन किये हुए सब केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर नाई को देवे। यथायोग्य उसको धन वा वस्त्र भी देवे और नाई केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर को जङ्गल में ले-जा, गढा खोदके उसमें सब डाल ऊपर से मिट्टी से दबा देवे। अथवा गोशाला, नदी वा तालाब के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाड़ देवे, ऐसा नापित से कह दे। अथवा किसी को साथ भेज देवे, वह उससे उक्त प्रकार करवा लेवे।

क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा, बालक के शिर पर लगाके स्नान करा, उत्तम वस्त्र पहनाके,

बालक को पिता अपने पास ले शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठके, पृष्ठ ३६-३७ में लिखे प्रमाणे सामवेद का महावामदेव्यगान करके बालक की माता स्त्रियों और बालक का पिता पुरुषों का यथा योग्य सत्कार करके विदा करें और जाते समय सब लोग तथा बालक के माता-पिता परमेश्वर का ध्यान करके—

"ओम् त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः"॥

इस मन्त्र को बोल बालक को आशीर्वाद देके अपने-अपने घर को पधारें और बालक के माता-पिता प्रसन्न होकर बालक को प्रसन्न रक्खें॥

॥ इति चूडाकर्मसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ कर्णवेध-संस्कारविधिं वक्ष्यामः

अत्र प्रमाणम्—

कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा॥

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है॥

बालक के कर्ण वा नासिका के वेध का समय जन्म से तीसरे वा पाँचवें वर्ष का उचित है।

जो दिन कर्ण वा नासिका के वेध का ठहराया हो, उसी दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान और वस्त्रालङ्कार धारण कराके बालक की माता यज्ञशाला में लावे। पृष्ठ ९-३७ तक लिखा हुआ सब विधि करे और उस बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धरके—

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

इस मन्त्र को पढ़के चरक-सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थों के जाननेवाले सद्वैद्य के हाथ से कर्ण वा नासिका वेध करावें कि जो नाड़ी आदि को बचाके वेध कर सके। पूर्वोक्त मन्त्र से दक्षिण कान, और—

ओं वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियः सखायं परि षस्वजाना।

योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयः समने पारयन्ती॥

इस मन्त्र को पढ़के दूसरे वामकर्ण का वेध करे।

तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रक्खे कि जिससे छिद्र पूर न जावें और ऐसी ओषधि इसपर लगावे जिससे कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे हो जावें॥

॥ इति कर्णवेधसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथोपनयन* संस्कारविधिं वक्ष्यामः

अत्र प्रमाणानि—

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्॥ १ ॥ गर्भाष्टमे वा॥ २ ॥
एकादशे क्षत्रियम्॥ ३ ॥ द्वादशे वैश्यम्॥ ४ ॥
आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालः॥ ५ ॥
आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद् वैश्यस्य,
अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति॥ ६ ॥

—यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का प्रमाण है॥

इसी प्रकार पारस्करादि गृह्यसूत्रों का भी प्रमाण है॥

अर्थः—जिस दिन जन्म हुआ हो, अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो, उससे आठवें वर्ष में ब्राह्मण के, जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म वा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें तथा ब्राह्मण के सोलह, क्षत्रिय के बाईस और वैश्य के बालक का चौबीसवें वर्ष से पूर्व-पूर्व यज्ञोपवीत होना चाहिए। यदि पूर्वोक्त काल में इनका यज्ञोपवीत न हो, तो वे पतित माने जावें।

श्लोकः— **ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।**
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥

—यह मनुस्मृति का वचन है

जिसे शीघ्र विद्या, बल और व्यवहार करने की इच्छा हो

---

* उप नाम समीप नयन अर्थात् प्राप्त करना वा होना।

और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों, तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म वा गर्भ से पाँचवें, क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छठे और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करे।

परन्तु यह बात तब सम्भव है कि जब बालक की माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् हुआ होवे। उन्हीं के बालक ऐसे उत्तम, बुद्धि में श्रेष्ठ और पढ़ने में शीघ्र समर्थ होते हैं। जब बालक का शरीर और बुद्धि वैसी हो कि अब यह पढ़ने के योग्य हुआ, तभी उसका यज्ञोपवीत करा देवें।

यज्ञोपवीत का समय—उत्तरायण सूर्य, और—

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्।
शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके॥

—यह शतपथब्राह्मण का वचन है॥

अर्थः—ब्राह्मण का वसन्त, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करें। अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है और उसका प्रातःकाल ही समय है।

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः॥

—यह शतपथब्राह्मण का वचन है॥

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो, उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिए। उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एक बार वा अनेक बार दुग्धपान, क्षत्रिय का लड़का 'यवागू' अर्थात् यव को मोटा दलके गुड़ के साथ पतली जैसीकि कढ़ी होती है, वैसी बनाकर पिलावें और 'आमिक्षा' अर्थात् जिसको श्रीखण्ड वा सिखण्ड कहते हैं, वैसी जो दही चौगुना, दूध एक गुना तथा यथायोग्य खाँड, केसर डालके कपड़े में छानकर बनाया जाता है, उसको वैश्य का लड़का पीके व्रत करे, अर्थात् जब-जब लड़कों को

भूख लगे, तब-तब तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें, अन्य पदार्थ कुछ न खावें-पीवें।

विधिः—अब जिस दिन उपनयन करना हो, उसके पूर्व दिन में सब सामग्री इकट्ठी कर याथातथ्य शोधन आदि कर लेवे और उस दिन पृष्ठ ९-२८वें तक कुण्ड के समीप सब सामग्री धर, प्रातःकाल बालक का क्षौर करा, शुद्ध जल से स्नान करावे। उत्तम वस्त्र पहना, यज्ञमण्डप में पिता वा आचार्य बालक को मिष्टान्नादि का भोजन कराके वेदी के पश्चिमभाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावे। बालक का पिता और पृष्ठ २८-२९ में लिखे प्रमाणे ऋत्विज् लोग भी पूर्वोक्त प्रकार अपने-अपने आसन पर बैठ, यथावत् आचमनादि क्रिया करें।

पश्चात् कार्यकर्त्ता बालक के मुख से—

ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्मचार्यसानि॥

ये वचन बुलवाके आचार्य*—

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्।

तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे॥

इस मन्त्र को बोलके बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहनावे। पश्चात् बालक आचार्य के सम्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेके—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।

आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥ १॥

---

* 'आचार्य' उसको कहते हैं कि जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द, अर्थ, सम्बन्ध और क्रिया का जाननेहारा, छल, कपटरहित, अतिप्रेम से सबको विद्या का दाता, परोपकारी तन, मन और धन से सबको सुख बढ़ाने में तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा, सबका हितैषी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय होवे।

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥ २॥

इन मन्त्रों को बोलके आचार्य बायें स्कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल, दाहिने हाथ के नीचे बग़ल में निकाल कटि तक धारण करावे। तत्पश्चात् बालक को अपने दाहिने ओर साथ बैठाके ईश्वर की स्तुतिप्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण का पाठ करके समिदाधान, अग्न्याधान कर (ओम् अदितेऽनुमन्यस्व०) इत्यादि पूर्वोक्त चार मन्त्रों से पूर्वोक्त रीति से कुण्ड के चारों ओर जल छिटका, पश्चात् आज्याहुति करने का आरम्भ करना।

वेदी में प्रदीप्त हुई समिधा को लक्ष में धर, चमसा में आज्यस्थाली से घी ले, आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार तथा पृष्ठ ३४-३५ में लिखे प्रमाणे आज्याहुति आठ, तीनों मिलके सोलह घृत की आहुति देके, पश्चात् बालक के हाथ से प्रधानहोम, जो विशेष शाकल्य बनाया हो, उसकी आहुतियाँ निम्नलिखित मन्त्रों से दिलानी—(ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०) पृष्ठ ३४ में लिखे प्रमाणे चार आज्याहुति देवें। तत्पश्चात्—

ओम् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा॥
इदमग्नये—इदन्न मम॥ १॥
ओं वायो व्रतपते० * स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥ २॥
ओम् सूर्य व्रतपते० स्वाहा॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम॥ ३॥
ओम् चन्द्र व्रतपते० स्वाहा॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम॥ ४॥
ओम् व्रतानां व्रतपते० स्वाहा॥
इदमिन्द्राय व्रतपतये—इदन्न मम॥ ५॥

---

* इसके आगे 'व्रतं चरिष्यामि' इत्यादि सम्पूर्ण मन्त्र बोलना चाहिए।

इन पाँच मन्त्रों से पाँच आज्याहुति दिलानी। उसके पीछे पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति चार और पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे स्विष्टकृत् आहुति एक और पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे प्राजापत्याहुति एक, ये सब मिलके छह घृत की आहुति देनी। सब मिलके पन्द्रह आहुति बालक के हाथ से दिलानी।

उसके पश्चात् आचार्य यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठे और बालक आचार्य के सम्मुख पश्चिम में मुख करके बैठे। तत्पश्चात् आचार्य बालक की ओर देखके—

ओम् आगन्त्रा समगन्महि प्र सुमत्यै युयोतन।

अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादयम्॥ १॥

इस मन्त्र का जप करे।

माणवकवाक्यम्—"ओं ब्रह्मचर्यमागामुप मा नयस्व"।

आचार्योक्तिः—"को नामासि[1]?"

बालकोक्तिः—"एतन्नामास्मि[2]।"

तत्पश्चात्—

ओम् आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽ ऊर्जे दधातन।

महे रणाय चक्षसे॥ १॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।

उशतीरिव मातरः॥ २॥

तस्माऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।

आपो जनयथा च नः॥ ३॥

इन तीन मन्त्रों को पढ़के बटुक की दक्षिण हस्ताञ्जलि

---

१. तेरा नाम क्या है, ऐसा पूछना।

२. मेरा यह नाम है।

शुद्धोदक से भरनी।

तत्पश्चात् आचार्य अपनी हस्ताञ्जलि भरके—

ओं तत्सवि॒तुर्वृ॑णीमहे व॒यं दे॒वस्य॒ भोज॑नम्।

श्रेष्ठं॑ सर्व॒धात॒मं॒ तुरं॒ भग॑स्य धीमहि॥ ४॥

इस मन्त्र को पढ़के आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़के, बालक की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठसहित पकड़के—

ओम् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ*।

इस मन्त्र को पढ़के बालक की हस्ताञ्जलि का जल नीचे पात्र में छुड़ा देना। इसी प्रकार दूसरी बार, अर्थात् प्रथम आचार्य अपनी अञ्जलि भर, बालक की अञ्जलि में अपनी अञ्जलि का जल भरके, अङ्गुष्ठसहित हाथ पकड़के—

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ॥

इस मन्त्र से पात्र में छुड़वा दे। पुनः इसी प्रकार तीसरी बार आचार्य अपने हाथ में जल भर, पुनः बालक की अञ्जलि में भर, अङ्गुष्ठसहित हाथ पकड़के—

ओम् अग्निराचार्यस्तव, असौ॥

तीसरी बार बालक की अञ्जलि का जल छुड़वाके, बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह उसे देखके आचार्य—

ओं देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं गोपाय स मामृत॥

इस एक और पृष्ठ ७९ में लिखे प्रमाणे (तच्चक्षुर्देवहितम्०) इस दूसरे मन्त्र को पढ़के बालक को सूर्यावलोकन करा,

---

* 'असौ' इस पद के स्थान में बालक का सम्बोधनान्त नामोच्चारण सर्वत्र करना चाहिए।

बालकसहित आचार्य सभामण्डप में आ, यज्ञकुण्ड की उत्तरबाजू की ओर बैठके—

ओं युवा सुवासा परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः॥

इस तथा—

ओं सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्व, असौ*॥

इस मन्त्र को पढ़े और बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सम्मुख बैठे। पश्चात् आचार्य बालक के दक्षिण स्कन्धे पर अपने हाथ से स्पर्श और पश्चात् अपने हाथ को वस्त्र से आच्छादित करके—

ओं प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्त्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि, अमुम्॥ १॥

इस मन्त्र को बोलने के पश्चात्—

ओं अहुर इदं ते परिददामि, अमुम्॥ २॥

इस मन्त्र से उदर पर। और—

ओं कृशन इदं ते परिददामि, अमुम्॥ ३॥

इस मन्त्र से हृदय।

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि, असौ॥ ४॥

इस मन्त्र को बोलके दक्षिण स्कन्ध, और—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, असौ॥ ५॥

इस मन्त्र को बोलके वाम हाथ से बायें स्कन्ध पर स्पर्श करके, बालक के हृदय पर हाथ धरके—

ओं तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥ ६॥

इस मन्त्र को बोलके आचार्य सम्मुख रहकर बालक के

---

* 'असौ' और 'अमुम्' इन दोनों पदों के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिए।

दक्षिण हृदय पर अपना हाथ रखके—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

आचार्य इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले।

अर्थात् 'हे शिष्य बालक! तेरे हृदय को मैं अपने अधीन करता हूँ। तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्र मन हो प्रीति से सुनकर उसके अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति परमात्मा तुझको मुझसे युक्त करे'। यह प्रतिज्ञा करावे।

इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे कि— 'हे आचार्य! आपके हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूँ। मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे। आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिए और परमात्मा मेरे लिए आपको सदा नियुक्त रक्खे'।

इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करके—

आचार्योक्तिः—को नामाऽसि ?

तेरा नाम क्या है?

बालकोक्तिः—[असौ] अहम्भोः।

मेरा अमुक नाम है। ऐसा उत्तर देवे।

आचार्यः—कस्य ब्रह्मचार्यसि?

तू किसका ब्रह्मचारी है?

बालकः—भवतः।

आपका।

आचार्य बालक की रक्षा के लिए—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव असौ *॥

---

* 'असौ' इस पद के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिए।

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात्—

ओं कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामि॥ १॥

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि। देवाय त्वा सवित्रे परिददामि। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि। द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि। सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्टयै॥ २॥

इन मन्त्रों को बोल बालक को शिक्षा करे कि—'तू प्राण आदि की विद्या के लिए यत्नवान् हो'।

यह उपनयन-संस्कार पूरा हुए पश्चात् यदि उसी दिन वेदारम्भ करने का विचार पिता और आचार्य का हो तो उसी दिन करना और जो दूसरे दिन का विचार हो तो पृष्ठ ३६-३७ में लिखे प्रमाणे महावामदेव्यगान करके संस्कार में आई हुई स्त्रियों का बालक की माता और पुरुषों का बालक का पिता सत्कार करके विदा करे और माता-पिता, आचार्य, सम्बन्धी, इष्ट, मित्र सब मिलके—

'ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः, आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः॥'

इस प्रकार आशीर्वाद देके अपने-अपने घर को सिधारें॥

॥ इत्युपनयनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ वेदारम्भसंस्कारविधिर्विधीयते

'वेदारम्भ' उसे कहते हैं—'जो गायत्रीमन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग* चारों वेदों के अध्ययन करने के लिए नियम धारण करना होता है।

समयः—जो दिन उपनयन-संस्कार का है, वही वेदारम्भ का है। यदि उस दिवस में न हो सके अथवा करने की इच्छा न हो तो दूसरे दिन करे। यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे।

विधिः—जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो, उस दिन प्रातःकाल शुद्धोदक से स्नान कराके, शुद्ध वस्त्र पहिना, पश्चात् कार्यकर्त्ता अर्थात् पिता, यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठे।

तत्पश्चात् पृष्ठ ९-२१ तक **ईश्वरस्तुति****, **प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण** करके, पृष्ठ ३० में लिखे प्रमाणे **(भूर्भुवः स्वः)** इस मन्त्र से अग्न्याधान पृ० ३० में लिखे प्रमाणे

---

* **अङ्ग**—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष। **उपाङ्ग**—पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त। **उपवेद**—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र। **ब्राह्मण**—ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ। **वेद**—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन सबको क्रम से पढ़ें।

** जो उपनयन किये पश्चात् उसी दिन वेदारम्भ करे, उसको पुनः वेदारम्भ के आदि में ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना और स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करना आवश्यक नहीं।

(**उद्बुध्य-स्वाग्ने०**) इस मन्त्र से अग्नि को प्रदीप्त करके, प्रदीप्त समिधा पर पृष्ठ ३१ में लिखे प्रमाणे (**ओं अयन्त इध्म०**) इत्यादि चार मन्त्रों से समिदाधान, पृष्ठ ३२ में लिखे प्रमाणे (**ओं अदितेऽनुमन्यस्व०**) इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीनों ओर और (**ओम् देव सवितः०**) इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटकाके, पृष्ठ ३२-३३ में लिखे प्रमाणे **आघारावाज्य-भागाहुति** चार, **व्याहृति आहुति** चार और पृष्ठ ३४-३५ में लिखे प्रमाणे आज्याहुति आठ मिलके सोलह आज्याहुति देने के पश्चात् प्रधान* होमाहुति दिलाके, पश्चात् पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे **व्याहृति आहुति** चार और **स्विष्टकृद् आहुति** एक तथा पृष्ठ ३५ में लिखे प्रमाणे **प्राजापत्याहुति** एक मिलकर छह आज्याहुति बालक के हाथ से दिलानी। तत्पश्चात्—

ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु। यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। एवं माꣳ सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि। एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्॥

इस मन्त्र से वेदी के अग्नि को इकट्ठा करना।

तत्पश्चात् बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करके, पृष्ठ ३२ में लिखे प्रमाणे (अदितेऽनुमन्यस्व०) इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसिंचन करके, बालक कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रहकर, घृत में भिजोके एक समिधा हाथ में ले—

ओम् अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽ एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहम-

---

* 'प्रधान होम' उसको कहते हैं, जो संस्कार में मुख्य करके किया जाता है।

सान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा॥

इस मन्त्र से समिधा वेदीस्थ अग्नि के मध्य में छोड़ देना। इसी प्रकार दूसरी ओर तीसरी समिधा छोड़े।

पुनः पृष्ठ १०० में लिखे प्रमाणे (ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं०) इस मन्त्र से वेदीस्थ अग्नि को इकट्ठा करके पृष्ठ ३२ में लिखे प्रमाणे (ओम् अदितेऽनुमन्यस्व०) इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसेचन करके बालक वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठके वेदी की अग्नि पर दोनों हाथों को थोड़ा-सा तपाके हाथ में जल लगा—

ओं तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि॥ १॥
ओम् आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि॥ २॥
ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि॥ ३॥
ओं अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म आपृण॥ ४॥
ओं मेधां मे देवः सविता आदधातु॥ ५॥
ओं मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु॥ ६॥
ओं मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ॥ ७॥

इन सात मन्त्रों से सात बार किञ्चित् हथेली उष्ण कर जल-स्पर्श करके मुख-स्पर्श करना। तत्पश्चात् बालक—

ओं वाक् च म आप्यायताम्॥ इस मन्त्र से मुख।
ओं प्राणश्च म आप्यायताम्॥ इस मन्त्र से नासिका द्वार।
ओं चक्षुश्च म आप्यायताम्॥ इस मन्त्र से दोनों नेत्र।
ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम्॥ इस मन्त्र से दोनों कान।
ओम् यशो बलञ्च म आप्यायताम्॥ इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे।

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु।
मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु।
मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु।
यत्ते अग्रे तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम्।
यत्ते अग्रे वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्।
यत्ते अग्रे हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम्॥

इन मन्त्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान करके कुण्ड की उत्तरबाजू की ओर जाके जानू को भूमि में टेकके पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के सम्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे।

बालकोक्तिः—अधीहि भूः सावित्रीं भो अनुब्रूहि॥

अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि—'हे आचार्य! प्रथम एक ओंकार, पश्चात् तीन महाव्याहृति, तत्पश्चात् सावित्री—ये त्रिक अर्थात् तीनों मिलके परमात्मा के वाचक मन्त्र का मुझे उपदेश कीजिए'।

तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कन्धे पर रखके अपने हाथ से बालक के दोनों हाथों की अंगुलियों को पकड़के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन बार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे।

प्रथम बार—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्।

इतना टुकड़ा एक-एक पद का शुद्ध उच्चारण बालक से कराके, दूसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

एक-एक पद से यथावत् धीरे-धीरे उच्चारण करवाके,

तीसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

धीरे-धीरे इस मन्त्र को बुलवाके संक्षेप से इसका अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थः—(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का नाम है, जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं। (भूः) जो प्राण का भी प्राण, (भुवः) सब दुःखों से छुड़ानेहारा, (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति करानेहारा है, उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता, (देवस्य) कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय करानेहारे परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करनेवाला, पवित्र, शुद्ध स्वरूप है, (तत्) उसे हम लोग (धीमहि) धारण करें। (यः) वह परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण-कर्म-स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरित करे। इसी प्रयोजन के लिए इस जगदीश्वर की स्तुतिप्रार्थनोपासना करना और इससे भिन्न किसी को उपास्य, इष्टदेव, उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिए।

इस प्रकार अर्थ सुनाये पश्चात्—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

इस मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् दृढ़ प्रतिज्ञा करके—

ओम् इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥

इस मन्त्र से आचार्य सुन्दर, चिकनी, प्रथम बनाके रक्खी हुई मेखला* को बालक की कटि में बाँधके—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥

इस मन्त्र को बोलके दो शुद्ध कोपीन, दो अंगोछे, एक उत्तरीय और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे और उनमें से एक कोपीन, एक कटिवस्त्र और एक उपन्ना बालक को आचार्य धारण करावे। तत्पश्चात् आचार्य दण्ड[1] हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़—

ओं यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम्।
तमहं पुनराददे आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥

इस मन्त्र को बोलके बालक आचार्य के हाथ से दण्ड ले लेवे। तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ[2]॥ १॥ अपोऽशान॥ २॥

---

* ब्राह्मण को मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुषसंज्ञक तृण वा वल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिए।

१. ब्राह्मण के बालक को खड़ा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलाश वा बिल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को वट वा खदिर का ललाट भ्रू तक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्ष का नासिक के अग्रभाग तक दण्ड-प्रमाण है। और वे दण्ड चिकने सूधे हों, अग्नि में जले, टेढ़े, कीड़ों के खाये हुए न हों। और एक-एक मृगचर्म उनके बैठने के लिए, एक-एक जलपात्र, एक-एक उपपात्र और एक-एक आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिए।

२. 'असौ' इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम सर्वत्र उच्चारण करे।

कर्म कुरु ॥ ३ ॥ दिवा मा स्वाप्सीः ॥ ४ ॥ आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥ ५ ॥ द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥ ६ ॥ आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥ ७ ॥ क्रोधानृते वर्जय ॥ ८ ॥ मैथुनं वर्जय ॥ ९ ॥ उपरि शय्यां वर्जय ॥ १० ॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥ ११ ॥

अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोह-भयशोकान् वर्जय ॥ १२ ॥ प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसन्ध्योपासनेश्वर-स्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर ॥ १३ ॥ क्षुरकृत्यं वर्जय ॥ १४ ॥ मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥ १५ ॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥ १६ ॥ अन्तर्ग्रामनिवासोपा-नच्छत्रधारणं वर्जय ॥ १७ ॥ अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ॥ १८ ॥ तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षार-रेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥ १९ ॥ नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥ २० ॥ सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥ २१ ॥ मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यसमिदा-धानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातः सायमभिवादनविद्या-संचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ॥ २२ ॥

अर्थः—तू आज से ब्रह्मचारी है ॥ १ ॥ नित्य सन्ध्योपासन, भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर ॥ २ ॥ दुष्ट कर्मों को छोड़ धर्म किया कर ॥ ३ ॥ दिन में शयन कभी मत कर ॥ ४ ॥ आचार्य के अधीन रहके नित्य साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर ॥ ५ ॥ एक-एक साङ्गोपाङ्ग वेद के लिए

बारह-बारह वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्ष तक वा जबतक साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पूरे होवें, तबतक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर॥ ६॥ आचार्य के अधीन धर्माचरण में रहा कर, परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे, उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर॥ ७॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे॥ ८॥ आठ* प्रकार के मैथुन को छोड़ देना॥ ९॥ भूमि में शयन करना, पलङ्ग आदि पर कभी न सोना॥ १०॥ कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना, तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अञ्जन का सेवन मत कर॥ ११॥ अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक का ग्रहण कभी मत कर॥ १२॥ रात्रि के चौथे प्रहर में जाग, आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर॥ १३॥ क्षौर मत करा॥ १४॥ मांस, रूखा, शुष्क, अन्न मत खा और मद्यादि मत पी॥ १५॥ बैल, घोड़ा, हाथी, ऊँट आदि की सवारी मत कर॥ १६॥ गाँव में निवास, जूता और छत्र का धारण मत कर॥ १७॥ लघुशङ्का के बिना उपस्थ इन्द्रिय के स्पर्श से वीर्यस्खलन कभी न करके, वीर्य को शरीर में रखके निरन्तर ऊर्ध्वरेता अर्थात् वीर्य को नीचे मत गिरने दे, इस प्रकार यत्न से वर्ता कर॥ १८॥ तैलादि से अङ्गमर्दन, उबटना, अतिखट्टा इमली आदि, अतितीखा लालमिर्ची आदि, कसेला हरड़े आदि, क्षार, अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर॥ १९॥ नित्य युक्ति से आहार-विहार करके विद्या-ग्रहण में यत्नशील हो॥ २०॥ सुशील, थोड़ा बोलनेवाला,

---

* स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम, यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है, जो इनको छोड़ देता है, वही ब्रह्मचारी होता है।

सभा में बैठनेयोग्य गुण ग्रहण कर॥ २१ ॥ मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, सन्ध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण, प्रातःसायं आचार्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करने के कर्म और जो निषेध किये वे नित्य न करने के कर्म हैं॥ २२ ॥

जब पिता यह उपदेश कर चुके, तब बालक पिता को नमस्कार कर, हाथ जोड़के कहे कि—'जैसा आपने उपदेश किया है, मैं वैसा ही करूँगा।'

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके, कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रहके, माता-पिता, भाई-बहिन, मामा, मौसी, चाचा आदि से लेके जो भिक्षा देने में नकार न करें, उनसे भिक्षा* माँगे और जितनी भिक्षा मिले, उसे आचार्य के आगे धर दे। तत्पश्चात् आचार्य उसमें से कुछ थोड़ा-सा अन्न लेके वह सब भिक्षा बालक को दे देवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिए रख छोड़े।

तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठाके पृष्ठ ३६-३७ में लिखे प्रमाणे महावामदेव्यगान करना। तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे। पश्चात् सायंकाल तक विश्राम और गृहाश्रम-संस्कार में लिखा सन्ध्योपासन आचार्य बालक के हाथ से करावे।

और पश्चात् ब्रह्मचारीसहित आचार्य कुण्ड के पश्चिम भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और स्थालीपाक अर्थात् पृष्ठ २८

---

* ब्राह्मण का बालक यदि पुरुष से भिक्षा माँगे तो "भवान् भिक्षां ददातु" और जो स्त्री से माँगे तो "भवती भिक्षां ददातु" और क्षत्रिय का बालक "भिक्षां भवान् ददातु" और स्त्री से "भिक्षां भवती ददातु", वैश्य का बालक "भिक्षां ददातु भवान्" और "भिक्षां ददातु भवती" ऐसा वाक्य बोले।

में लिखे प्रमाणे भात बना, उसमें घी डाल पात्र में रख पृष्ठ ३१ में लिखे प्रमाणे समिदाधान कर, पुनः समिधा प्रदीप्त कर आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार दोनों मिलके आठ आज्याहुति देनी।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ा होके पृष्ठ १०० में लिखे प्रमाणे (ओम् अग्ने सुश्रवः) इस मन्त्र से [वेदीस्थ अग्नि को इकट्ठा करके, पृष्ठ १०० में लिखे प्रमाणे (ओम् अग्नये समिध०) इस मन्त्र से तीन समिधाओं की आहुति देवे। तत्पश्चात् बालक बैठके यज्ञकुण्ड को अग्नि से अपना हाथ तपा, पृष्ठ १०१ में लिखे प्रमाणे पूर्ववत् मुख का स्पर्श करके अङ्गस्पर्श करे।

तत्पश्चात् पृष्ठ २८ में लिखे प्रमाणे बनाये हुए भात को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिए देवे। पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में लेके, उसमें घी मिला—

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।

सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा॥

इदं सदसस्पतये इदन्न मम॥ १॥

ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा॥

इदं सवित्रे—इदन्न मम॥ २॥

ओम् ऋषिभ्यः स्वाहा॥ इदम् ऋषिभ्यः—इदन्न मम॥ ३॥

इन तीन मन्त्रों से तीन और पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से चौथी आहुति देवे। तत्पश्चात् पृष्ठ ३३ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति चार और पृष्ठ ३४-३५ में लिखे प्रमाणे (ओं त्वन्नो०) इन आठ मन्त्रों से आठ आज्याहुति मिलके बारह आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर

पूर्वाभिमुख बैठके, पृष्ठ ३६-३७ में लिखे प्रमाणे महावामदेव्यगान आचार्य के साथ करके—

'अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये॥'

ऐसा वाक्य बोलके आचार्य का वन्दन करे और आचार्य—

'आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य॥'

ऐसा आशीर्वाद देके, पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्टान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक्-पृथक् बैठके करें।

तत्पश्चात् हस्त-मुख प्रक्षालन करके, जो निमन्त्रण से संस्कार में आये हों, उन्हें यथायोग्य भोजन करा, तत्पश्चात् स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें और सब जने बालक को निम्नलिखित—

'हे बालक! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवान् अरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः॥'

ऐसा आशीर्वाद देके अपने-अपने घर को चले जाएँ।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी तीन दिन तक भूमि में शयन, प्रातःसायं पृष्ठ १०० में लिखे प्रमाणे (अग्ने सुश्रवः०) इस मन्त्र से वेदीस्थ अग्नि को इकट्ठा कर, (अग्नये समिध०) इस मन्त्र से समिधा होम और पृष्ठ १०१ में लिखे प्रमाणे मुख आदि अङ्गस्पर्श आचार्य करावे तथा तीन दिन तक पृष्ठ १०८ में लिखे प्रमाणे (सदसस्पति०) इत्यादि चार स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करवावे और तीन दिन तक क्षार-लवणरहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे।

तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करने के समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य भी करे।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥ १॥
इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति॥ २॥
ब्रह्मचार्य ति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः। स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥ ३॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ ४॥
ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्॥ ५॥
ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम्॥ ६॥
—अथर्व० कां० ११। सू० ५॥

संक्षेप से भाषार्थः—आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञापूर्वक समीप रखके तीन रात्रिपर्यन्त गृहाश्रम के प्रकरण में लिखे सन्ध्योपासनादि सत्पुरुषों के आचार की शिक्षा कर, उसके आत्मा के भीतर गर्भरूप विद्या स्थापन करने के लिए उसे धारण कर और पूर्ण विद्वान् बना देता है और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को आता है, तब उसे देखने के लिए सब विद्वान् लोग सम्मुख जाकर बड़ा मान्य करते हैं॥ १॥

जो यह ब्रह्मचारी वेदारम्भ के समय तीन समिधा अग्नि में होमकर, ब्रह्मचर्य के व्रत का नियमपूर्वक सेवन करके, विद्या पूर्ण करने को दृढ़ोत्साही होता है, वह जानो पृथिवी, सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश सबका पालन करता है, क्योंकि वह

समिदाधान, मेखलादि चिह्नों का धारण और परिश्रम से विद्या पूर्ण करके, इस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप तप से सब लोगों को सद्गुण और आनन्द से तृप्त कर देता है॥ २॥

जब विद्या से प्रकाशित और मृगचर्मादि धारण कर दीक्षित होके दीर्घश्मश्रुः=४० वर्ष तक डाढ़ी, मूँछ आदि पञ्च केशों का धारण करनेवाला ब्रह्मचारी होता है, वह पूर्व समुद्ररूप ब्रह्मचर्यानुष्ठान को पूर्ण करके गुरुकुल से उत्तर समुद्र अर्थात् गृहाश्रम को शीघ्र प्राप्त होता है। वह सब लोकों का संग्रह करके बारम्बार पुरुषार्थ और जगत् को सत्योपदेश से आनन्दित कर देता है॥ ३॥

वही राजा उत्तम होता है, जो पूर्ण ब्रह्मचर्यरूप तपश्चरण से पूर्ण विद्वान्, सुशिक्षित, सुशील, जितेन्द्रिय होकर राज्य का विविध प्रकार से पालन करता है और वही विद्वान् ब्रह्मचारी की इच्छा करता और आचार्य हो सकता है, जो यथावत् ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ता है॥ ४॥

जैसे लड़के पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या पढ़, पूर्ण जवान होके अपने सदृश कन्या से विवाह करें, वैसे कन्या भी अखण्ड ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़, पूर्ण युवति हो, अपने तुल्य पूर्ण युवावस्थावाले पति को प्राप्त होवे॥ ५॥

जब ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों को शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के ज्ञानपूर्वक धारण करता है, तभी प्रकाशमान होता, उसमें सम्पूर्ण दिव्य गुण निवास करते और सब विद्वान् उससे मित्रता करते हैं। वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य ही से प्राण, दीर्घजीवन, दुःख-क्लेशों का नाश, सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापकता, उत्तम वाणी, पवित्र आत्मा, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठ प्रजा को धारण करके, सब मनुष्यों के हित के लिए सब विद्याओं का प्रकाश करता है॥ ६॥

ब्रह्मचर्यकालः

इसमें छान्दोग्योपनिषद् के तृतीय प्रपाठक के सोलहवें खण्ड का प्रमाण—

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद॥ १॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विꣳशतिर्वर्षाणि तत् प्रातःसवनं चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳसर्वं वासयन्ति॥ २॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनꣳसवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ ३॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति॥ ४॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳ सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ ५॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवनमष्टा-चत्वारिꣳ शदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳसर्वमाददते॥ ६॥